* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

भगवान् श्रीरामसे हनुमान्जीकी भेंट

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धन-पूजन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
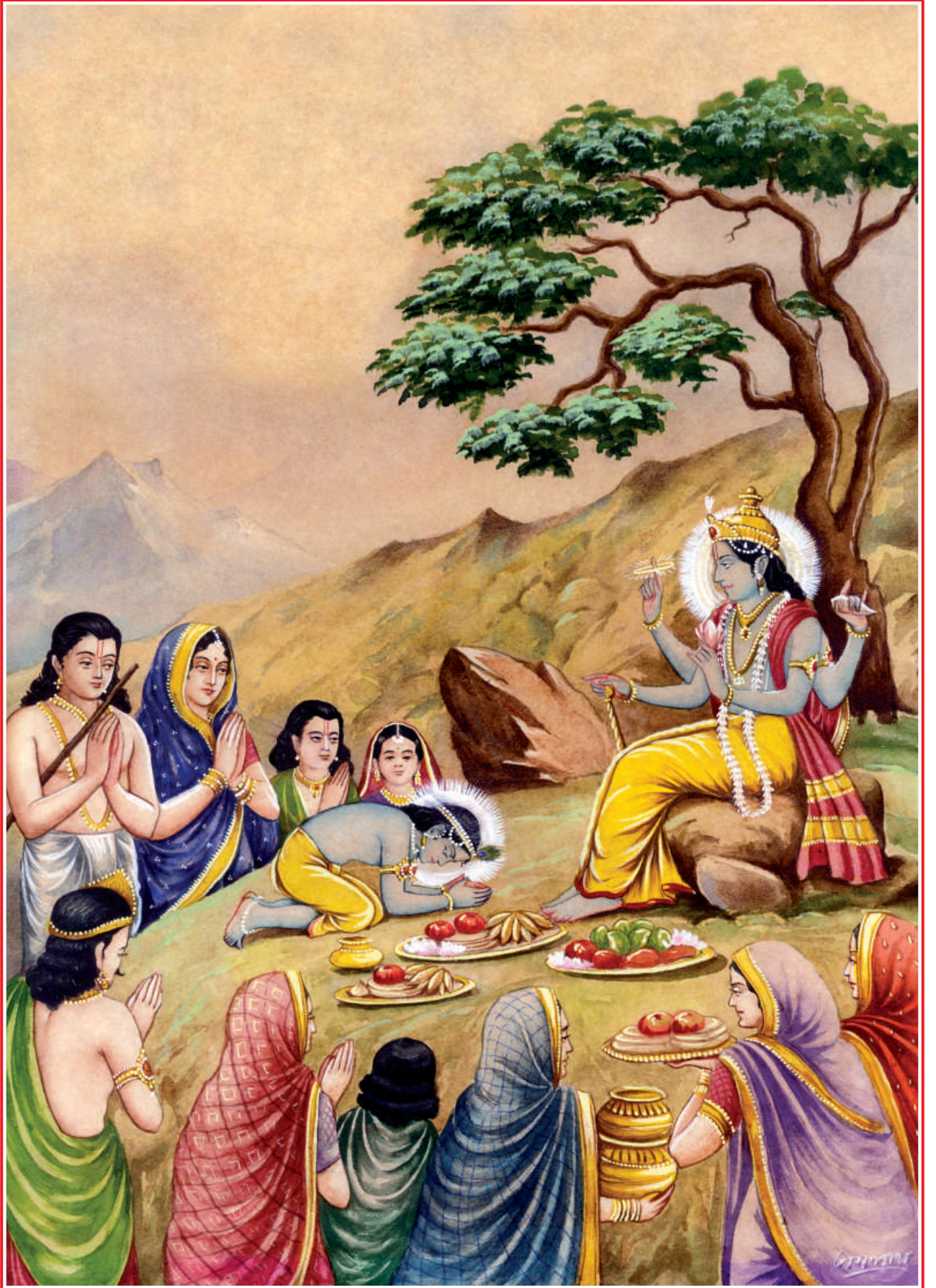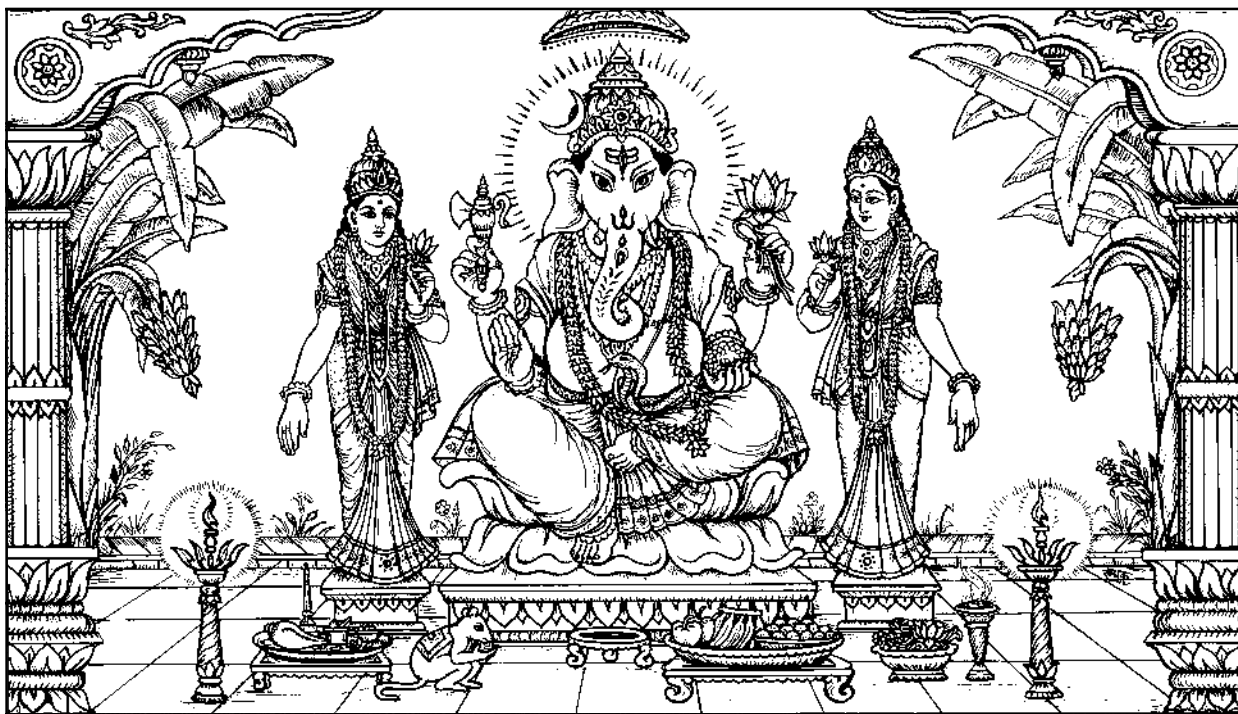
कल्याण

यतो वेदवाचो विकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

वर्ष ९५

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, नवम्बर २०२१ ई०

संख्या ११

पूर्ण संख्या ११४०

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धनपूजन

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः। शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः॥

तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्रेऽऽत्मनाऽऽत्मने। अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात्॥

एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः। हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम्॥

भगवान् श्रीकृष्ण गोपोंको विश्वास दिलानेके लिये गिरिराजके ऊपर एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये, तथा 'मैं गिरिराज हूँ' इस प्रकार कहते हुए सारी सामग्री आरोगने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने अपने उस स्वरूपको दूसरे व्रजवासियोंके साथ स्वयं भी प्रणाम किया और कहने लगे—'देखो, कैसा आश्चर्य है! गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर कृपा की है। ये चाहे जैसा रूप धारण कर सकते हैं। जो वनवासी जीव इनका निरादर करते हैं, उन्हें ये नष्ट कर डालते हैं। आओ, अपना और गौओंका कल्याण करनेके लिये इन गिरिराजको हम नमस्कार करें।' [श्रीमद्भागवत-

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, नवम्बर २०२१ ई०, वर्ष ९५—अंक ११

विषय-सूची

चित्र-सूची

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क } वार्षिक US$ 50 (` 3,000) पंचवर्षीय US$ 250 (` 15,000) { Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर निःशुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे

॥ श्रीहरिः ॥

समस्त ज्ञानीजनोंका मत है कि जगत् अनित्य है। अनित्यका अर्थ है, जो निरन्तर परिवर्तनशील है, नित्य वह होता है, जो अपने स्वरूपमें सदा-सर्वदा स्थिर रहता है। जगत्‌की अनित्यता अर्थात् निरन्तर परिवर्तनशीलताको यदि हम ठीकसे ध्यानमें ले लें, तो अनेक प्रकारके मोह-ममताके पाशसे छुटकारा सम्भव है।

हमारा प्रधान आग्रह होता है कि संसारमें जो कुछ हमें प्रिय है, पुत्र, मित्र, स्नेही, स्वजन, जवानी, सम्पत्ति आदि वह सदा बना रहे। यह असम्भवकी आकांक्षा है। चीजोंको ठहराये रखनेका आग्रह यदि हम छोड़ दें, तो चित्तमें शान्तिका अवतरण हो जाय। जो स्वभावतः होने ही वाला है, उसके विपरीतकी आकांक्षा हमें विचलित करती रहती है।

इसका एक सरल-सा मार्ग है—अपने अनुकूल परिवर्तनको भगवत्कृपा मान लेना और प्रतिकूल परिवर्तनको भगवत्-इच्छा मानना। इससे चित्तमें शान्ति बनी रहती है और यह यथार्थ भी है।

—सम्पादक

कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

***याद रखो*—**कर्म बन्धनकारक नहीं है, बन्धनकारक है कर्म और कर्मफलमें आसक्ति तथा कामना। मनमेंसे कर्मासक्ति और विषयासक्तिको निकाल दो और भगवान्‌के साथ चित्तका योग करके भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करो—भलीभाँति कर्म करो, फिर वे कर्म बन्धनकारक नहीं होंगे; न उनके अनुकूल और प्रतिकूल फलोंसे चित्तमें कोई हर्ष या उद्वेग ही होगा।

***याद रखो*—**भगवान् ही तुम्हारा अपना स्थान है, तुम्हारा परम आश्रयस्थल है। उस नित्य स्थानमें स्थित रहते हुए ही सारे कर्मोंका आचरण करो। फिर चाहे तुम किसी देश, किसी ग्राम, किसी घरमें रहो, कोई आपत्तिकी बात नहीं।

***याद रखो*—**तुम्हारी लौकिक परिस्थितियोंमें चाहे जैसा परिवर्तन हो, तुम्हारे कार्यक्षेत्र और कार्योंमें कुछ भी फेर-बदल हो, तुम भगवान्‌की गोदको कभी मत छोड़ो। यही तुम्हारा अपना घर है।

***याद रखो*—**जब तुम्हारे मन-इन्द्रियोंके सारे काम भगवान्‌की गोदमें बैठे हुए होंगे, तुम भगवान्‌के साथ योगस्थ होकर कुल काम करोगे, तब तुम्हारे सभी काम स्वयमेव पवित्रसे पवित्रतर होते चले जायँगे। तुम्हारे कार्योंसे स्वत: ही लोककल्याण होगा, उनमें आनन्द, शान्ति, सामंजस्य और कल्याणरूपी फल फलेंगे।

***याद रखो*—**जो कर्म आसक्ति और फलकामनाको लेकर तुम अपने लिये करोगे, वह कर्म कभी पवित्र नहीं रह सकता; क्योंकि उसमें लोककल्याणकी और भगवत्पूजाकी दृष्टि ही नहीं है।

***याद रखो*—**जब तुम्हारे कर्म भगवत्पूजाके लिये होंगे तब तुम्हारी सारी चिन्ताएँ मिट जायँगी, सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी, सारी प्रतिकूल तथा बाधक परिस्थितियाँ हट जायँगी; सब ओर एक विलक्षण सामंजस्य, एक सरस समन्वय दिखायी देगा। तुम्हारे कार्यमें बाधा देनेवालोंकी संख्या क्रमश: घट जायगी और सभी ओरसे सहायताकी वर्षा होने लगेगी।

***याद रखो*—**भगवान्‌का आश्रय, भगवान्‌की गोद ऐसी पवित्र, इतनी विशद, इतनी सार्वभौम, इतनी सुखदायिनी और इतनी कल्याणकारिणी है कि वैसा स्थान अन्य कहीं न है, न हो सकता है और न होगा। उसमें एक विलक्षणता और है कि एक बार जिसने उस गोदको पा लिया, वह कभी उस परम सुखद गोदसे उतरेगा नहीं। एक बार जो वहाँ पहुँच जाता है, वह वहींका हो रहता है। अतएव वह स्वयं नित्य सुख, नित्य शान्ति और नित्य आनन्दका नित्य निकेतन बन जाता है।

***याद रखो*—**भगवान्‌की गोदमें स्थान प्राप्त हो जानेके बाद तुम्हारे जीवनमें एक नियमितता आ जायगी। सभी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब अपने-अपने स्थलोंमें समुचित क्रिया करेंगी, पर सबका स्वर एक होगा। जैसे कहीं तबले, सारंगी, सितार, हारमोनियम, झाँझ आदिके साथ नृत्य होता हो और सबके स्वर एवं नृत्य करनेवालोंका प्रत्येक पद ठीक तालपर ही पड़ता हो। सभीमें एक अपूर्व समन्वय हो और सभी एकस्वरमें मधुर तान छेड़ते हुए नृत्यकी गतिके साथ मिले हुए संगीतकी सुन्दरताको बढ़ा रहे हों, वैसे ही तुम्हारा जीवन स्वरतालबद्ध समन्वयात्मक मधुर संगीतमय हो जायगा। कहीं उसमें बेसुरापन नहीं होगा, न कहीं ताल-भंग ही होगा, न कहीं पैर ही उलटे-सीधे पड़ेंगे। बस, लक्ष्य रहेंगे भगवान्, क्रिया होगी भगवान्‌की प्रीतिके लिये और फलरूपमें प्राप्त होंगे भगवान्! तुम्हारा जीवन और जन्म परम सुखी होकर धन्य हो जायगा और तुम्हारी अनन्त जन्मोंकी साध भगवान्‌के चरणकमलोंको प्राप्त करके पूर्ण हो जायगी। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

भगवान् श्रीरामसे हनुमान्जीकी भेंट

हनुमान्जी सुग्रीव आदि वानरोंके साथ ऋष्यमूक पर्वतकी एक बहुत ऊँची चोटीपर बैठे हुए थे। उसी समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीताजीकी खोज करते हुए लक्ष्मणजीके साथ ऋष्यमूक पर्वतके पास पहुँचे। ऊँची चोटीपरसे वानरोंके राजा सुग्रीवने उन लोगोंको देखा। उसने सोचा कि ये बालिके भेजे हुए दो योद्धा हैं, जो मुझे मारनेके लिये हाथमें धनुष-बाण लिये चले आ रहे हैं। दूरसे देखनेपर ये दोनों बहुत बलवान् जान पड़ते हैं। डरसे घबराकर उसने हनुमान्जीसे कहा—'हनुमान्! वह देखो, दो बहुत ही बलवान् मनुष्य हाथमें धनुष-बाण लिये इधर ही बढ़े चले आ रहे हैं। लगता है, इन्हें बालिने मुझे मारनेके लिये भेजा है। ये मुझे ही चारों ओर खोज रहे हैं। तुम तुरन्त तपस्वी ब्राह्मणका रूप बना लो और इन दोनों योद्धाओंके पास जाओ तथा यह पता लगाओ कि ये कौन हैं। यहाँ किसलिये घूम रहे हैं। अगर कोई भयकी बात जान पड़े तो मुझे वहींसे संकेत (इशारा) कर देना। मैं तुरन्त इस पर्वतको छोड़कर कहीं और भाग जाऊँगा।'

सुग्रीवको अत्यन्त डरा हुआ और घबराया देखकर हनुमान्जी तुरन्त तपस्वी ब्राह्मणका रूप बनाकर भगवान् श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीके पास जा पहुँचे। उन्होंने दोनों भाइयोंको माथा झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा—'प्रभो! आप लोग कौन हैं? कहाँसे आये हैं? यहाँकी धरती बड़ी ही कठोर है। आप लोगोंके पैर बहुत ही कोमल हैं। किस कारणसे आप यहाँ घूम रहे हैं? आप लोगोंकी सुन्दरता देखकर तो ऐसा लगता है—जैसे आप ब्रह्मा, विष्णु, महेशमें-से कोई हों या नर और नारायण नामके प्रसिद्ध ऋषि हों। आप अपना परिचय देकर हमारा उपकार कीजिये।'

हनुमान्जीकी मनको अच्छी लगनेवाली बातें सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपना और लक्ष्मणका परिचय देते हुए कहा कि 'राक्षसोंने सीताजीका हरण कर लिया है। हम उन्हें खोजते हुए चारों ओर घूम रहे हैं। हे ब्राह्मणदेव! मेरा नाम राम तथा मेरे भाईका नाम लक्ष्मण है। हम अयोध्यानरेश महाराज दशरथके पुत्र हैं। अब आप अपना परिचय दीजिये।' भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी बातें सुनकर हनुमान्जीने जान लिया कि ये स्वयं भगवान् ही हैं। बस, वे तुरन्त ही उनके चरणोंपर गिर पड़े। रामने उठाकर उन्हें गलेसे लगा लिया।

हनुमान्जीने कहा—'प्रभो! आप तो सारे संसारके स्वामी हैं। मुझसे मेरा परिचय क्या पूछते हैं? आपके चरणोंकी सेवा करनेके लिये ही मेरा जन्म हुआ है। अब मुझे अपने परम पवित्र चरणोंमें जगह दीजिये।' भगवान् श्रीरामने प्रसन्न होकर उनके मस्तकपर अपना हाथ रख दिया। हनुमान्जीने उत्साह और प्रसन्नतासे भरकर दोनों भाइयोंको उठाकर कंधेपर बैठा लिया। सुग्रीवने उनसे कहा था कि भयकी कोई बात होगी तो मुझे वहीं-से संकेत करना। हनुमान्जीने राम-लक्ष्मणको कंधेपर बिठाया—यही सुग्रीवके लिये संकेत था कि इनसे कोई भय नहीं है। उन्हें कंधेपर बिठाये हुए ही वह सुग्रीवके पास आये। उनसे सुग्रीवका परिचय कराया। भगवान्ने सुग्रीवके दु:ख और कष्टकी सारी बातें जानीं। उसे अपना मित्र बनाया और दुष्ट बालिको मारकर उसे किष्किन्धाका राजा बना दिया। इस प्रकार हनुमान्जीकी सहायतासे सुग्रीवका सारा दु:ख दूर हो गया।

समयकी अमूल्यता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्य-जीवनका समय बहुत ही मूल्यवान् है। लाख रुपया खर्च करके भी एक क्षणका समय अधिक नहीं मिल सकता। अतएव हमको तौल-तौलकर समय बिताना चाहिये। आपके पास जो कुछ सम्पत्ति है, वह सारी अर्पण कर दें तो भी मनुष्य-जीवनका एक क्षण मिलनेवाला नहीं है। एक दिनका जीवन अधिक मिलता हो तो सर्वस्वका अर्पण कर दे। आज मृत्यु है, सर्वस्व-अर्पणसे एक दिन मिल गया तो सर्वस्व-अर्पण कर दे। जीवनका समय अमूल्य है। कितना ही मूल्य दे दें, समय नहीं मिलेगा। कंजूस रुपयोंको बहुत सोच-सोचकर खर्च करता है। वैसे ही समयको कंजूसकी तरह बिताना चाहिये। दस वर्ष कोशिश करनेपर भी भगवान् नहीं मिले, किंतु कुछ समय अच्छा बिताया जाय तो पाँच मिनटमें मिल सकते हैं। अतएव सच्चे सुखके लिये समय बिताना चाहिये।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २। १६)

असत् वस्तुका तो अस्तित्व नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। जो क्षणमें नाश होनेवाला है, उसके लिये समय क्यों बितायें? संसारके सुख, स्त्री, पुत्र, धन सब नाशवान् हैं। '**आत्मबुद्धिप्रसादजम्**' सुख सात्त्विक है। उस सुखका फल असली है। सात्त्विक सुख भी राजस, तामस सुखसे बहुत ऊँचा है। इससे बढ़कर भजन-प्राप्तिका सुख है। ध्यानजनित सुख सात्त्विक है—

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥

(गीता ५। २१)

सांसारिक भोगोंमें आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला पुरुष अन्तःकरणमें जो भगवत्-ध्यानजनित आनन्द है, उसको प्राप्त होता है और वह पुरुष सच्चिदानन्दघन परमात्मरूप योगमें एकीभावसे स्थित हुआ अक्षय आनन्दका अनुभव करता है। बाहरके विषयोंमें आसक्ति-रहित अपनी आत्मामें ध्यानजनित सुखका अनुभव करता है। संसारसे वैराग्य होनेपर वृत्तियाँ संसारसे उपरामताको प्राप्त हो जाती हैं। तब उसका आत्मा परमात्माके ध्यानजनित सुखका अनुभव करता है। फिर उसकी आत्मा परमात्माके स्वरूपमें जम जाती है। वह अक्षय सुखका अनुभव करता है। विषयोंसे वैराग्यमें, वैराग्यसे परमात्माके ध्यानमें सुख अधिक है और ध्यानसे अलौकिक सुख परमात्माकी प्राप्तिमें है। इसलिये परमात्माके ध्यानमें समय बिताना चाहिये।

जब मनुष्य परमात्माके ध्यानमें मस्त हो जाता है, उस समय उसके भीतर शान्ति और आनन्दकी सीमा नहीं रहती। जब उस ध्यानके नशेमें मनुष्य विचरण करता है, उस समय त्रिलोकीका ऐश्वर्य उसे धूलके समान लगता है। ध्यानसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। ध्यान असली चीज है। यह सोचना चाहिये कि आयु-भर परिश्रम करके धन इकट्ठा किया और आज ही मरना है तो हमें उस धनसे क्या लाभ है? हम रच-पचकर समय क्यों नष्ट करें? दूसरी बात है शरीरकी। खा-पीकर शरीरमें खूब मांस बढ़ा लें। आखिरमें जब इसकी राख होनी है तो बढ़ानेसे फायदा ही क्या है? मृत्यु होनेपर लोग श्मशानमें ले जायँगे तो वे बेचारे ज्यादा तंग होंगे। शरीरकी तो राख ही होगी। अतएव जबतक शरीर रहे इससे परोपकार, सेवा, ईश्वरकी भक्ति, भजन, साधन करना चाहिये, जिसके फलस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति होकर अखण्ड आनन्द और शान्ति मिल जाय, तथा लाखों-करोड़ों भावीके जन्मोंके दुःखसमूहसे छुटकारा मिल जाय। भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

(गीता ८। १४-१५)

अनन्यभावसे जो नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करता है, उस महापुरुषको मैं सुलभतासे प्राप्त हो जाता हूँ। 'संसिद्धि' परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्त हुए महात्माजन दुःखके आलय पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होते। इसलिये लाख-करोड़ कामको छोड़कर मनुष्यको यह काम कर लेना चाहिये। ख्याल करना चाहिये कि मन बड़ा धोखेबाज, आलसी है। यह परमात्माका भजन, ध्यानका बहाना करके आलसी बना देता है। उसके आलस्यके फन्देमें नहीं पड़ना चाहिये। जो सोनेमें समय बिताता है, वह धोखेमें है। उसकी अपेक्षा वह उत्तम है, जो लोगोंकी सेवामें समय बिताता है। निद्रा-आलस्य तमोगुणी चीज है। इसलिये निद्रा-आलस्यमें समय नहीं बिताना चाहिये। वास्तवमें सोना खोना है। तमोगुणकी अपेक्षा तो रुपये कमानेमें समय खोना अच्छा है। रुपया हमारे काममें नहीं आयेगा तो हमारे मरनेके बाद दूसरेके काम तो आयेगा। तामसीसे राजसी श्रेष्ठ है। राजसीसे लोकोपकार, सेवाकार्य करनेवाला, दूसरोंको सुख पहुँचानेवाला अच्छा है। यह सात्त्विक है। सात्त्विकसे भी अधिक सात्त्विक है, जो परमात्माके भजन-ध्यानमें समय बिताये। भजन-ध्यानमें आलस्य आये, मन धोखा दे तो उससे अच्छा वह है जो रुपया कमानेमें समय बिताये। ऐसे धोखेमें कभी न आये। भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, श्रद्धा, प्रेम-लीलाकी बातोंमें समय बिताना चाहिये। इनके फलस्वरूप भगवान्‌में विशेष प्रेम और ध्यान होता है। सब साधनका फल है परमात्माका ध्यान और ध्यानका फल है परमात्माकी प्राप्ति। ध्यानको परमात्माकी प्राप्तिके समान या बढ़कर आदर दे। परमात्माकी प्राप्ति चाहे न हो, पर उनका ध्यान सदा बना रहना चाहिये। यदि एक बार आपका ध्यान हो गया तो आपकी सामर्थ्य नहीं कि आप उसे छोड़ दें। परमात्माके स्वरूपमें तैलधारावत् अपनी वृत्तियोंका समावेश करना ध्यान है। आप जो ध्यान करते हैं, वह तो स्मरण है, भगवान्‌की यादगिरी है। पहले स्मरण होता है, फिर ध्यान होता है।

ध्यानके लिये पहले भगवान्‌का आवाहन करना चाहिये। स्वरूपका आवाहन करे। आकाशमें स्वरूपको बाँध दे। फिर मनको उस स्वरूपमें एक जगह बाँध दे। धारणा करे—धारणाको कायम कर दे—यह ध्यान है। जब भगवान्‌का भजन-ध्यान ठीक होगा, तब आपकी दशा बदल जायगी। किसी भी स्वरूपका ध्यान करें जो आपका इष्ट हो। सब पदार्थोंके दो-दो स्वरूप हैं—साकार और निराकार अथवा स्थूल और सूक्ष्म। जैसे पुष्प पार्थिव चीज है, पुष्पसे जो गन्ध आती है, वह भी पृथ्वीका स्वरूप है, पर सूक्ष्म है। गन्ध तन्मात्रासे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई। आदिमें पृथ्वी निराकार थी। आकाश निराकार है, उसमें जल है—वह भी निराकार है। यही बादलका रूप धारण कर ले तो साकार बन जाता है। परमाणुरूप निराकार जल बादल बनकर आये तो साकार बन जाता है। फिर परमाणुरूप बनता है तो निराकार बन जाता है। वैसे ही देहधारी प्राणी सब निराकार थे, आगे फिर निराकार बन जायँगे, केवल बीचमें साकार हैं।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

(गीता २। २८)

हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहले अप्रकट थे और मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, केवल बीचमें ही प्रकट हैं; फिर ऐसी स्थितिमें क्या शोक करना है?

शरीरोंके विनाशके लिये भगवान् बतलाते हैं—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥

(गीता ८। १८)

सम्पूर्ण दृश्यमात्र भूतगण ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें अव्यक्तसे अर्थात् ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरसे उत्पन्न होते हैं

और ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें उस अव्यक्त नामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें ही लय होते हैं।

भगवान् निराकार स्वरूपसे साकारमें और साकारसे निराकारमें आ जाते हैं। जैसे अग्नि निराकार है, वह संघर्षणसे साकार बन जाती है। उसी प्रकार परमात्मा निराकारसे साकार बन जाते हैं। निराकाररूपसे अग्नि सब जगह व्यापक है; वैसे ही परमात्मा निराकाररूपसे सब जगह व्यापक हैं। अग्नि बुझ गयी, स्वरूप बदल गया, किंतु वह कायम रहती है। वैसे ही परमात्मा प्रकट होकर फिर निराकाररूपमें हो जाते हैं।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

परमात्मा समानभावसे सब जगह मौजूद रहते हैं और वे प्रेमसे प्रकट हो जाते हैं। ध्यानसे प्रकट हो जाते हैं। प्रेम और ध्यान नहीं हो तो अपने नामसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। नामके अधीन नामी है। वास्तवमें परमात्मा निराकाररूपमें समानभावसे परिपूर्ण हो रहे हैं। उनसे प्रार्थना करे कि हे प्रभु! आप साक्षात् प्रकट होकर दर्शन दें तो वे देते हैं। भगवान् मदद नहीं दें तो न सही, पर ध्यान तो अपने अधिकारकी बात है। सूरदासजीने भगवान्से कहा है कि—

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानिके मोहि।
हृदय ते जब जाहुगे पुरुष बदौंगो तोहि॥

पहले तो यह बात ध्यानमें रखे कि निराकाररूपसे भगवान् सब जगह हैं ही। वे ही सगुण-साकाररूपमें प्रकट हो जाते हैं। यहाँ जो शान्ति है, वह परमात्माका स्वरूप है। हमारे चित्तमें जो प्रसन्नता है, यह भी परमात्माका स्वरूप है। समय-समयपर रोमांच और आनन्दकी लहरें उठें, यह भी परमात्माका स्वरूप है। ऐसे समयमें परमात्माका आवाहन करे तो वे साकाररूपमें प्रकट हो जाते हैं। अतएव 'नारायण' की पुकार लगाये। वास्तवमें राम, कृष्ण, नारायण सब एक हैं। राम, कृष्ण, विष्णु—ये तीनों युगोंमें प्रकट हुए थे। मैं गृहस्थीसे संन्यासीके कपड़े बदलूँ तो मैं तो वही हूँ। वैसे ही एक परमात्मा तीन रूपवाले बने। भगवान्का आवाहन करे, पुकारे—

एक बात प्रभु पूँछउँ तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही॥

भरतजीकी तरह आवाहन करे।

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥

मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवान् मिलेंगे। ''सोई'' से यह भाव है कि भगवान् बड़े दयालु हैं, उनके विरदकी तरफ देखकर विश्वास है कि वे जरूर मिलेंगे। भगवान्का विरद है—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

मैं दीन हूँ, वे दीनबन्धु हैं। उनका स्वभाव बड़ा कोमल है। मैं दोषोंसे भरा हुआ हूँ। पूर्वमें कहा है—

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

आप अपने दासोंके दोषोंकी ओर देखते ही नहीं। इसलिये विश्वास है कि आप मिलेंगे। इसपर भी नहीं मिले तो मेरे प्राण नहीं रहेंगे। प्राण रह गये तो समझना चाहिये कि मेरे समान कोई पापी नहीं। यह भगवान्को बुलानेका भाव है। 'हे नाथ! हे नाथ!!' पुकार लगाये। जैसे द्रौपदीने पुकार लगायी थी तो वे आ गये। हम तो ध्यानावस्थामें ही आपके आनेकी बात चाहते हैं, क्योंकि हम तो पात्र नहीं। हम तो यही चाहते हैं कि हमें आपका निरन्तर ध्यान बना रहे। 'हे वासुदेव!' 'हे गोविन्द!' 'हे राम!'—ऐसी पुकार लगानी चाहिये।

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

भगवान् आकाशमें आ गये। स्वरूप बड़ा चमकीला है। प्रभुका स्वरूप प्रकाशका पुंज है। रामके रूपमें प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं। युवावस्थाका स्वरूप है। जनकपुरके बगीचेमें जिस रूपसे पधारे थे, उस समयका रूप है। पहले भगवान्की स्मृति होती है, फिर स्वरूपकी धारणा होती है। उसके बाद धारणासे उनके अन्दर प्रवेश हो जाता है। इस तरह ध्यानमें मस्त होकर अपना समय बिताना चाहिये।

हमारा कर्तव्य

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

यह तो संसार ही ठहरा। संसरणके लिये सभी प्राणी यहाँ आते ही रहते हैं। पर किसीके शापादिके कारण, किंचित् कर्मवैचित्र्यसे, किंवा स्वेच्छासे लीलापूर्वक विग्रह ग्रहणकर भगवद्भजनका दिव्यानन्द लेनेके लिये कभी-कभी दिव्य पुरुषोंका भी यहाँ आना हो जाता है[१]। पर उनके आनेमें तथा सामान्य प्राणीके आनेमें भेद है। जहाँ अन्य जीव आकर यों ही लौट जाते हैं, वहाँ विशिष्ट जन आकर कुछ करके जाते हैं। वेदोंमें इस संसारको परब्रह्म, परात्पर पुरुषका क्रीडोद्यान—आराम कहा गया है। साधारण जीव यहाँ आकर यों ही मस्ती छानने लग जाते हैं। यह उद्यान किसका है, कैसे लगा है, इसका स्वामी किधर है, इत्यादि बातोंपर वे विचार नहीं करते, फिर इस उद्यानके स्वामीसे मिलनेकी ओर तो उनकी प्रवृत्ति होगी ही कैसे? पर दिव्यजन ऐसा क्यों करने लगे। वे इस विविध वैचित्र्योपेत संसाररूपी आराम—उद्यानको देखते ही, इसके रचयिता, पाता, पतिको ढूँढ़ना शुरू करते हैं, और दयाधाम प्रभु उनके प्रयासको सफल बनाते हैं[२]। परमानन्दमयको ढूँढ़ने, याद करने, ध्यान धरनेमें जो आनन्द होता है, वह भी अपरिमेय है, फिर उनके मिलने, साक्षात् होनेके आनन्दका माप-जोख क्या होगा।

'कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्'

भगवान्‌का, भगवत्कृपाका जब साक्षात्कार होता है, तब अपने भजनके अल्पत्वका स्मरणकर लज्जा तथा चिन्ता होती है। उस समय यही सूझता है कि यदि सदा-सर्वदा भजन किया होता तो आज कितने लाभमें रहता? उस समय एक-एक क्षणकी अनवधानता, भजनहीनताका पश्चात्ताप होता है। ऐसी दशामें यह बिलकुल ठीक ही है कि एक भी क्षण भगवान्‌को विस्मरण करने, उनसे विमुख होनेसे बढ़कर कोई दूसरी हानि, विपत्ति, मूढ़ता, जड़ता, अन्धता, चूक, दुर्भाग्य या उत्पात नहीं[३]। वेदान्त-सिद्धान्तानुसार यों भी भगवत्-स्मरणसे बड़ा लाभ है। कहते हैं कि ईश्वरके अंश जीवात्मामें भी परमात्माके समान दिव्य गुण हैं। जैसे अग्निके अंश विस्फुलिंगमें अग्निके ही प्रकाशत्व, दाहकत्वादि गुण हैं। पर अग्निसे सम्बन्ध विच्छिन्न होनेपर जैसे विस्फुलिंगकी शक्ति नष्ट होने लगती है, उसी प्रकार भगवद्ध्यानादि भगवत्सम्बन्धविहीन होनेसे जीवके ऐश्वर्य, बल, वीर्य, विज्ञान, शक्ति, तेज आदि गुण तिरोहित होते जाते हैं। पर प्रभुके ध्यानादि करनेसे ये गुण पुनः प्रकट होने लगते हैं और अधिकाधिक भगवद्ध्यान, भगवत्स्मरण करनेसे जीवमें असाधारण बल, वीर्य, ऐश्वर्य, तेज, विज्ञान, शक्ति आ जाती है।[४] यह तो हुई साधना-भक्तिसे लाभकी बात। पर इसके अतिरिक्त करोड़ों माताओंके तुल्य करुणाराशि प्रभु जब इससे प्रसन्न होकर अपनी करुणाविशेषका परिचय देंगे, तब क्या-क्या हो जायगा, यह कौन बतलाये? अतएव जिस किसी प्रकार भी हो, सबकी बाजी लगाकर प्रभुके लिये चल देना चाहिये। जीवनका भी क्या मोह? अगणित शरीरोंका अबतक त्याग करना पड़ा होगा, फिर इसी शरीरके

१-'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्ते।' (नृसिंहपूर्वतापिनीपर शांकरभाष्य)

२-'आरामं तस्य पश्यन्ति नेह पश्यन्ति केचन।' (वेद)

३-इयमेव परा हानिरुपसर्गोऽयमेव हि। अभाग्यं परमं चैतत् केशवं नैव चिन्तयेत्॥
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चान्धजडमूढता। दुर्भाग्यं परमं चैतद् वासुदेवं न यत् स्मरेत्॥
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते। सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा भ्रान्तिः सैव विक्रिया॥

४-(क) पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ। (वेदान्तदर्शन)
(ख) तस्याभिधानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः॥ (श्वेता० १।११)
(ग) भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम्। सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह॥ (श्रीमद्भा० १।२।२५)

लिये मोह क्यों? मोह, शोक, पश्चात्ताप तो होना चाहिये प्रभुकी कृपाविशेषको बिना प्राप्त किये ही यहाँसे चलनेमें। श्रुति कहती है—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः।

'गार्गि! जो इस अक्षरब्रह्म परमात्माको बिना जाने, बिना प्राप्त किये ही चला जाता है, वह कृपण है; शोच्य है।' श्रीमधुसूदन गोस्वामीने गीताके '**कार्पण्यदोषोपहत-स्वभावः**' (२।७)

—इस श्लोककी टीकामें 'कृपण' शब्दकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

'यः स्वल्पमपि वित्तक्षतिं न क्षमते स कृपणः।'

जो स्वल्प, तनिक भी वित्त-व्यय, परमावश्यकता होनेपर भी कौड़ीका खर्च न सह सके, वह 'कृपण' है। आवश्यक मितव्ययिता तो शोभाकी बात है, पर भगवत्कृपाके लिये तो सब कुछ व्यय कर देनेको सदा तत्पर रहना चाहिये। सैकड़ों बार सिर देकर भी उन्हें प्राप्त कर लेना बड़ा सस्ता सौदा है, अतएव हमें उनकी प्रसन्नताके लिये उनके परम प्रिय धर्मके रक्षणके लिये जान हथेलीपर लिये तत्पर रहना चाहिये। बस, हमारा इसीमें परम कल्याण है और इसीमें हमारी कर्तव्यताकी भी इयत्ता है।

पाखण्डीको परमात्मा नहीं मिलते

(गोलोकवासी सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंका प्रेम इतना अधिक बढ़ गया था कि वे उनका वियोग एक क्षण भी नहीं सह सकती थीं। श्रीकृष्णके वियोगमें वे मूर्च्छित होने लगीं।

श्रीकृष्णने अपने बालमित्रोंसे कह दिया था कि किसी गोपीको मूर्च्छा आये तो मुझे बुलाना। मैं मूर्च्छा उतारनेका मन्त्र जानता हूँ।

किसी गोपीको मूर्च्छा आती तो शीघ्र ही कृष्णको बुलाया जाता। श्रीकृष्ण जानते थे कि इस गोपीके प्राण अब मुझमें ही अटके हैं। इसे कोई वासना नहीं है। यह जीव अत्यन्त शुद्ध हो गया है एवं मुझसे मिलनेके लिये आतुर है। अतः श्रीकृष्ण उसके सिरपर हाथ फेरते हुए कानमें कहते, 'शरद्पूर्णिमाकी रात्रिको तुझसे मिलूँगा। तबतक धीरज रख और मेरा ध्यान कर।' यह सुनकर गोपीकी मूर्च्छा दूर हो जाती।

वृन्दावनमें एक वृद्धा गोपी थी, उसे लगा कि इसमें कुछ गड़बड़ अवश्य है। इन छोकरियोंको मूर्च्छा आती है तो कन्हैया इनके कानमें कुछ मन्त्र पढ़ता है। मैं भी यह मन्त्र जानना चाहती हूँ।

बुढ़ियाने मूर्च्छित होनेका ढोंग करके मन्त्र जाननेका निश्चय किया। काम करते-करते वह एकदम गिर गयी। उसकी बहूको बहुत दुःख हुआ। वह कन्हैयाको बुलाने दौड़ी।

श्रीकृष्णने कहा, 'सफेद बालवालेपर मेरा मन्त्र नहीं चलता है। बाल सफेद होनेपर भी दिल सफेद न हो, प्रभुके नामकी माला न जपे, तो ऐसा जीव मरे या जिये—इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं नहीं जाऊँगा। तू किसी दूसरेको बुला ले।'

किंतु गोपीने बहुत आग्रह किया। गोपीका शुद्ध प्रेम था, अतः उसके आग्रहको मानकर श्रीकृष्ण घर आये और बुढ़ियाको देखकर बोले, 'इसको मूर्च्छा नहीं आयी है। इसे तो भूत लगा है, किंतु घबराओ मत! भूत उतारनेका मन्त्र भी मुझे आता है। एक लकड़ी ले आओ।'

बुढ़िया घबरायी कि अब तो मार पड़ेगी। यह ढोंग तो मुझे ही भारी पड़ जायगा।

कृष्णने लकड़ीके दो-चार हाथ मारे कि बुढ़िया बोल उठी, 'मुझे मत मारो, मत मारो। मुझे न मूर्च्छा आयी है, न भूत लगा है। मैंने तो ढोंग किया था।'

पाखंड भूत है। अभिमान भी भूत है। पाखंडीको परमात्मा नहीं मिलते।

रामनामका फल

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

दो भाई थे, पर दोनोंके स्वभावमें अन्तर था। बड़ा भाई साधु-सेवी और भगवान्के भजनमें रुचि रखनेवाला था। दान-पुण्य भी करता था। सरल हृदय था। इसलिये कभी-कभी नकली साधुओंसे ठगा भी जाता था। छोटा भाई अच्छे स्वभावका था, परंतु व्यापारी मस्तिष्कका था। उसे साधु-सेवा, भजन और दानके नामपर ठगाया जाना अच्छा नहीं लगता था और वह यही समझता था कि ये सब ठगीके सिवा और कुछ नहीं है। अत: वह बड़े भाईके कार्योंसे सहमत नहीं था। उग्र विरोध तो नहीं करता था, पर समय-समयपर अपनी असम्मति प्रकट करता और असहयोग तो करता ही था।

बड़े भाईको इस बातका दु:ख था कि उसका छोटा भाई मानव-जीवनके वास्तविक लक्ष्य भगवान्की प्राप्तिके साधनमें रुचि न रखकर दुनियादारीमें ही पूरा लगा हुआ है। बड़े भाईकी अच्छी नियत थी और वह अपने छोटे भाईको भगवान्की ओर लगा देखना चाहता था। वह समय-समयपर नम्रता और युक्तियोंसे समझाता भी। दूसरे अच्छे लोगोंसे भी कहलवाता, उपदेश दिलवाता था; पर छोटे भाईपर कोई प्रभाव नहीं था।

एक बार अपनी शिष्यमण्डलीसहित एक विरक्त महात्मा उनके शहरमें आये। बड़ा भाई साधु-सेवी था ही। वह महात्माकी सेवामें उन्हें एक दिन भिक्षा करानेकी इच्छासे निमन्त्रण देने पहुँचा। वहाँ बात-ही-बातमें उसने अपने छोटे भाईकी स्थिति बतलायी। महात्माने, पता नहीं क्या विचारकर, उससे कहा कि 'तुम एक काम करना—जिस दिन तुम्हारा छोटा भाई घरमें रहे, उस दिन हमें भोजनके लिये बुलाना और हमलोगोंको ले जाने और लौटानेके समय एक बाजा साथ रखना। तुम्हारा छोटा भाई जो करे, उसे करने देना। शेष सारी व्यवस्था हम कर लेंगे।'

महात्माके आज्ञानुसार व्यवस्था हो गयी। बजते हुए बाजेके साथ महात्मा मण्डलीसहित आ रहे थे। घरमें उस दिन ज्यादा रसोई बनते देखकर और घरके समीप ही बाजेकी आवाज सुनकर छोटे भाईको कुछ संदेह हुआ और उसने बड़े भाईसे पूछा कि 'रसोई किस लिये बन रही है और अपने घरकी ओर बाजेके साथ कौन आ रहा है?' बड़े भाईने कहा—'एक पहुँचे हुए महात्मा अपनी शिष्यमण्डलीसहित यहाँ पधारे हैं और उन्हें अपने यहाँ भोजनके लिये बाजे-गाजेके साथ लाया जा रहा है। महात्मा भी पहुँचनेवाले ही हैं।' छोटे भाईको ये सब बातें बहुत बुरी लगीं। उसने कहा—'आप ये सब चीजें करते हैं, मुझे तो अच्छी नहीं लगतीं। आप बड़े हैं, आप जो चाहें, सो करें। किंतु मैं यह सब देख नहीं सकता। इसलिये मैं कमरेके अन्दर किवाड़ बन्दकर बैठ जाता हूँ। आपके महात्मा जब खा-पीकर चले जायँगे, तब मैं बाहर निकलूँगा। इससे किसी प्रकारका कलह होनेसे घर बच जायगा।' यह कहकर उसने कमरेमें जाकर अन्दरसे किवाड़ बन्द कर लिये। महात्माजी आये और सारी बातोंको जानकर उन्होंने उस कमरेके बाहरकी साँकल लगा दी। भोजन सम्पन्न हुआ। तदनन्तर महात्माजीने अपनी सारी मण्डलीको बाजेके साथ लौटा दिया और स्वयं उस कमरेके दरवाजेके पास खड़े हो गये।

जब लौटते हुए बाजेकी अन्दरसे आवाज सुनी, तब छोटे भाईने समझा कि 'अब सब लोग चले गये हैं।' उसने अन्दरकी साँकल हटाकर किवाड़ खोलने चाहे, पर वे बाहरसे बन्द थे। उसने जोर लगाया। फिर बार-बार पुकारकर कहा—'बाहर किसने बन्द कर दिया है, जल्दी खोलो।' महात्माने किवाड़ खोले और उसके बाहर निकलते ही बड़े जोरसे उसके हाथकी कलाईको पकड़ लिया। महात्मामें ब्रह्मचर्यका बल था। वह चेष्टा करके भी हाथ छुड़ा नहीं सका। महात्माने हँसते हुए कहा—'भैया, हाथ छुड़वाना है तो मुँहसे 'राम' कहो।' उसने आवेशमें कहा—'मैं यह नाम नहीं लूँगा।' महात्मा बोले, 'तो फिर हाथ नहीं छूटेगा।' क्रोध और बलका पूरा प्रयोग करनेपर भी जब वह हाथ नहीं छुड़ा सका,

तब उसने कहा—'अच्छा, 'राम'। छोड़ो हाथ जल्दी और भागो यहाँसे।' महात्मा मुसकराते हुए यह कहकर बाहर निकल गये कि—'तुमने 'राम' कहा सो तो बड़ा अच्छा किया; पर मेरी एक बात याद रखना। इस 'राम'-नामको किसी भी कीमतपर कभी बेचना नहीं।'

यह घटना तो हो गयी, पर कोई विशेष अन्तर नहीं आया। समयपर बड़े भाईकी मृत्यु हो गयी और उसके कुछ दिन बाद छोटे भाईकी भी मृत्यु हो गयी। विषय-वासना और विषय-कामनावाले लोग विवेकभ्रष्ट हो जाते हैं और जाने-अनजाने छोटे-बड़े पाप करते रहते हैं। पापका फल तो भोगना ही पड़ता है। मरनेके अनन्तर छोटे भाईकी आत्माको यमलोकमें ले जाया गया और वहाँ कर्मका हिसाब-किताब देखकर बताया गया कि 'विषय-वासनावश इस जीवने मनुष्य-योनिमें केवल साधु-अवज्ञा और भजनका विरोध ही नहीं किया, और भी बड़े-बड़े पाप किये हैं। पर इसके द्वारा एक बड़ा भारी महान् कार्य हुआ है, इसके जीभसे एक महात्माके सम्मुख एक बार जबरदस्ती 'रामनाम'का उच्चारण हुआ है।'

यमराजने यह सुनकर मन-ही-मन उस एक बार रामनामका उच्चारण करनेवालेके प्रति श्रद्धा प्रकट की और कहा—'इस राम-नामके बदलेमें जो कुछ चाहो सो ले लो। उसके बाद तुम्हें पापोंका फल भोगना पड़ेगा।' उसको महात्माकी बात याद आ गयी। उसने यमराजसे कहा—'मैं राम-नामको बेचना नहीं चाहता; पर इसका जो कुछ भी मूल्य होता हो, वह आप मुझको दे दें।' रामनामका मूल्य आँकनेमें यमराज असमर्थ थे। अतएव उन्होंने कहा—'देवराज इन्द्रके पास चलकर उनसे पूछना है कि रामनामका मूल्य क्या होता है।' उस जीवने कहा—'मैं यों नहीं जाता। मेरे लिये एक पालकी मँगायी जाय और उसमें कहारोंके साथ आप भी लगें।' उसने यह सोचा कि 'रामनामका मूल्य जब ये नहीं बता सकते, तब अवश्य ही वह बहुत बड़ी चीज है और इसकी परीक्षा इसीसे हो जायगी कि ये पालकी ढोनेवाले कहार बनते हैं या नहीं।' उसकी बात सुनकर यमराज सकुचाये तो सही, पर सारे पापोंका तुरंत नाश कर देनेवाले और मन-बुद्धिसे अतीत फलदाता भगवन्नामके लेनेवालेकी पालकी उठाना अपने लिये सौभाग्य समझकर वे पालकीमें लग गये।

पालकी स्वर्ग पहुँची। देवराज इन्द्रने स्वागत किया और यमराजसे सारी बात जानकर कहा—'मैं भी रामनामका मूल्य नहीं जानता। ब्रह्माजीके पास चलना चाहिये।' उस जीवने निवेदन किया—'यमराजके साथ आप भी पालकीमें लगें तो मैं चलूँ।' इन्द्रने उसकी बात मान ली और यमराजके साथ पालकीमें वे भी जुत गये। ब्रह्मलोक पहुँचे और ब्रह्माने भी राम-नामका मूल्य आँकनेमें अपनेको असमर्थ पाया और उसी जीवके कहनेसे वे भी पालकीमें जुत गये। उनकी राय भगवान् शंकरके पास जानेकी रही। इसलिये वे पालकी लेकर कैलास पहुँचे। भगवान् शंकरने ब्रह्मा, इन्द्र और यमराजको पालकी उठाये आते देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया। पूछनेपर सारी बातें उन्हें बतायी गयीं। शंकरजी बोले—'भाई! मैं तो रात-दिन रामनाम जपता हूँ, उसका मूल्य आँकनेकी मेरे मनमें कभी कल्पना ही नहीं आती। चलो वैकुण्ठ, ऐसे महाभाग्यवान् जीवकी पालकीमें मैं भी लगता हूँ। वैकुण्ठमें भगवान् नारायण ही कुछ बता सकेंगे।'

अब पालकीमें एक ओर यमराज और देवराज लगे हैं और दूसरी ओर ब्रह्मा और शंकर कहार बने लगे हैं। पालकी वैकुण्ठ पहुँची। चारों महान् देवताओंको पालकी उठाये आते देखकर भगवान् विष्णु हँस पड़े और पालकी वहाँ दिव्य भूमिपर रख दी गयी। भगवान्ने आदरपूर्वक सबको बैठाया। भगवान् विष्णुने कहा—'आपलोग पालकीमें बैठे हुए इस महाभाग जीवात्माको उठाकर मेरी गोदमें बैठा दीजिये।' देवताओंने वैसा ही किया। तदनन्तर भगवान् विष्णुके पूछनेपर भगवान् शंकरने कहा—'इसने एक बार परिस्थितिसे बाध्य होकर 'राम' नाम लिया था। रामनामका मूल्य इसने

जानना चाहा, पर हमलोगोंमेंसे कोई भी रामनामका मूल्य बतानेमें समर्थ नहीं था। इसीलिये हमलोग इस जीवकी इच्छानुसार पालकीमें लगकर आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। अब आप ही बताइये कि राम-नामका मूल्य क्या होना चाहिये?'

भगवान् विष्णुने मुसकराते हुए कहा—'आप-सरीखे महान् देव इसकी पालकी ढोकर यहाँतक लाये और आप लोगोंने इसे मेरी गोदमें बैठाया। अब यह मेरी गोदका नित्य अधिकारी हो गया। राम-नामका पूरा मूल्य तो नहीं बताया जा सकता, पर आप इसीसे मूल्यका कुछ अनुमान लगा सकते हैं। आपलोग अब लौट जाइये।' एक बार लिये हुए 'राम'नामका भगवान् विष्णुके द्वारा इस प्रकार महान् मूल्याभास पाकर शंकरादि देवता लौट गये।

एक विरक्त सन्तने यह कथा लगभग ४५ वर्ष पूर्व कलकत्तेमें मुझको सुनायी थी। घटनाका उल्लेख किस ग्रन्थमें है, मुझको पता नहीं है। पर भगवान्की महिमा—भगवन्नामकी महिमाका इसमें जो वर्णन आया है, वह वास्तवमें यथार्थ लगता है। घटना चाहे कल्पित हो, पर महिमा तो सत्य है ही। ***'राम न सकहिं नाम गुन गाईं।'***

जीव स्वाधीन है या पराधीन ?

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

ईश्वरके द्वारा दिये हुए विवेकका आदर करके प्राप्त शक्तिका सदुपयोग करनेमें जीव सर्वथा स्वतन्त्र है। यह स्वतन्त्रता ईश्वरकी दी हुई है। इसके सिवा जीव सर्वथा परतन्त्र है। अत: वास्तवमें स्वाधीन उसीको कहा जा सकता है, जो अपने प्राप्त विवेकका आदर करके सब प्रकारकी चाहसे रहित हो गया है; क्योंकि किसी प्रकारकी चाहके रहते हुए कोई प्राणी अपनेको स्वतन्त्र नहीं कह सकता। जबतक मनुष्यका अन्त:करण अपवित्र है, उसमें राग-द्वेष और भोग-वासना वर्तमान है, तबतक वह स्वाधीन नहीं है। जबतक वह जिस कामको करना उचित नहीं समझता, उसे भी करता रहता है और जिसे करना उचित समझता है, उसे नहीं कर पाता, तबतक वह स्वाधीन कैसा? अत: प्राप्तका दुरुपयोग करनेवाला अज्ञानपूर्वक भले ही अपनेको स्वाधीन समझे, पर वास्तवमें वह पराधीन ही है।

जबतक मनुष्य अपनी प्रसन्नता-हेतु किसी दूसरे व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति और अवस्थाको मानता रहता है, तबतक वह अपने जीवनमें दीन-हीन और पराधीन ही बना रहता है। कभी भी स्वाधीनताका अनुभव नहीं कर सकता। प्राप्त विवेकका सदुपयोग करके अपने बनाये हुए दोषोंको हटाकर अन्त:करणको शुद्ध कर लेनेमें प्राणी सदैव स्वाधीन है। अतएव ऐसा करके वह प्रभुकी कृपासे सब प्रकारकी स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है; क्योंकि फिर उसकी प्रसन्नता किसी दूसरेपर निर्भर नहीं रहती।

साधकको मानना चाहिये कि मनुष्यमें जो विवेकशक्ति है, यह किसी कर्मका फल नहीं है। यह तो उस ईश्वरकी देन है, जो बिना ही कारण अपने मधुर स्वभावसे प्रेरित होकर सबपर कृपा करता रहता है अर्थात् जो प्राणिमात्रका सुहृद् है। शरीर, इन्द्रिय और सम्पत्ति आदिको कर्मफल माना जा सकता है, इसमें कोई आपत्ति नहीं है; किंतु विवेक किसी क्रियाद्वारा उत्पन्न होनेवाला नहीं है। यह तो मनुष्यको प्रभुकी कृपासे ही मिला है।

अतएव ईश्वरके दिये हुए विवेकका आदर करते हुए उसका सदुपयोग करना चाहिये अर्थात् अपने बनाये हुए दोषोंका विचारपूर्वक निरीक्षण करके उनको हटाना चाहिये और चित्तकी शुद्धि करके अपने प्रभुपर विश्वास करना चाहिये और अपने-आपको उनके समर्पण करके उनके विशुद्ध प्रेमको प्राप्त करना चाहिये।

मानवदेहकी सार्थकता

(ब्रह्मलीन जगद्‌गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

मर्त्यलोकमें तीन वस्तुएँ अत्यन्त दुर्लभ हैं—मानवदेह, मोक्षकी इच्छा और महापुरुषोंका समागम। मानव-देहके लिये सन्त तुलसीदास कहते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

अनन्तकालसे अनेक पापयोनियोंमें उत्पन्न हो-होकर विभिन्न प्रकारकी दारुण यातनाओंसे खिन्न होते हुए जीवको देखकर अकारण-करुण, करुणा-वरुणालय भगवान् अपने अंशभूत जीवपर कृपाकर मानवशरीर प्रदान करते हैं। जिस शरीरके लिये देवतालोग तरसते रहते हैं, वह सुरदुर्लभ मानवशरीर एकमात्र प्रभुकृपासे हम लोगोंको प्राप्त हुआ है। इतना ही नहीं वह भी भारतवर्षमें, जिसके लिये देवतालोग कहा करते हैं कि 'अहा! वे धन्य हैं, जो भारतवर्षमें उत्पन्न हुए'—**'धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे'** भारतवर्षमें भी हम लोगोंको इस समय श्रीवृन्दावनधाम प्राप्त हुआ है, यह प्रभुकी और कृपा है। कारण संसारमें परम दुर्लभ महापुरुष-समागम यहाँ अत्यन्त सुलभ हो रहा है, जिससे मोक्षविषयिणी इच्छाका होना स्वाभाविक है। ऐसी स्थितिमें जब तीनों वस्तुएँ सुलभ हो रही हैं, इससे यह भावना होती है कि अब प्रभु हमलोगोंका अवश्य कल्याण करना चाहते हैं। और भगवान् हमारा कल्याण करना क्यों न चाहें? आखिर तो हम उन्हींके अंश हैं, अंशी अपने अंशपर कृपा करता ही है। भगवान् सनातन हैं, हम उनके अंश भी सनातन हैं, क्योंकि भगवान्‌ने ही कहा है—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'** और हमलोगोंका धर्म भी सनातन है। शास्त्र भगवान्‌के आज्ञाभूत हैं, अतएव वे भी सनातन हैं।

शास्त्रोंने मानवदेहका प्रयोजन तत्त्वजिज्ञासा अर्थात् सारवस्तुके जाननेकी इच्छा करना बताया है, न कि जन्मजन्मान्तरार्जित कर्मवश प्राप्त होनेवाले फलोंकी प्राप्ति—**'जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः।'** सनातन शास्त्रोंने सनातन जीवका लक्ष्य परब्रह्मकी प्राप्ति बतलाया है। अतः उसकी प्राप्तिके लिये यत्न करना चाहिये। कल्प-कल्पान्तरोंतक तेलीके बैलकी तरह कोल्हूके चारों ओर फिरनेकी आवश्यकता नहीं। सबको शास्त्रोंके आधारपर अपना लक्ष्य निश्चय करना चाहिये। शास्त्रप्रतिपादित सभी देव परब्रह्म ही हैं। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार शिव, विष्णु, ब्रह्मा, दुर्गा आदिकी उपासनासे फल सबको एक ही मिलता है। जैसे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार भोजनमें विभिन्नता होनेपर लक्ष्य भूखकी निवृत्तिमें किसीका भेद नहीं। आइये, हमलोग शास्त्रोंसे अपना लक्ष्य निश्चय करें—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

तत्त्वज्ञ लोग अद्वय ज्ञानको ही तत्त्व कहते हैं। यही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् शब्दसे कहा जाता है। इस प्रकार लक्ष्यको जान लेनेपर भी उसका पाना अत्यन्त कठिन है। गीता कहती है—

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

हजारों-लाखों मनुष्योंमें कोई एक सिद्धि अर्थात् तत्त्वज्ञानप्राप्तिके लिये यत्न करता है तथा भगवत्-प्राप्तिके लिये—तत्त्वसाक्षात्कारके लिये निरन्तर श्रवण, मननादिमें व्यासक्त उन सिद्धोंमें भी कोई एक तत्त्वतः अर्थात् नित्य, शुद्ध, बुद्ध, युक्त स्वभाव, आनन्दैकरस, अद्वितीय परतत्त्वरूप मुझे जानता है।

आप लोगोंको सौभाग्यसे मनुष्य-जीवन मिला है और देखनेसे ऐसा लगता है कि मुमुक्षा भी है, संयोगसे वृन्दावनधाम भी प्राप्त है, जिसके लिये भक्तजन कहा करते हैं—

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी।
यत्र गोवर्धनं नास्ति तत्र मे न मनः सुखम्॥

जहाँ श्रीवृन्दावन नहीं है, जहाँ श्रीयमुना नहीं हैं और जहाँ हरिदास श्रीगोवर्धन नहीं हैं, वहाँ मेरा मन सुख नहीं पाता। अतः ऐसे पवित्रधाममें रहकर आप लोगोंको आत्मकल्याण अवश्य करना चाहिये। उसका

उपाय है—**'तं रसयेत् तं भजेत।'** अर्थात् उसी परब्रह्म परमात्माका सदा भजन करें तथा उसीका सदा अनुभव करें। भगवान्‌के भजनसे धीरे-धीरे अज्ञान मिटता है और जैसे-जैसे उसका अपसरण होता है, वैसे-ही-वैसे बुद्धिमें धर्मका समादर होता है। उससे बुद्धिमें स्वस्थता आती है, फिर स्वस्थताके अनुपातसे ही मनुष्यके सुखकी उन्नति होती है। शास्त्र कहते हैं—

यावद्यावत्तमोऽपैति बुद्धौ धर्मसमाहृतम्।
तावत्तावद्धियः स्वास्थ्यं तावत्तावत्सुखोन्नतिः॥

कहीं भगवान्‌की असीम कृपा हुई और उनका साक्षात्कार हो गया, तब तो क्या कहना है फिर तो इसके समस्त संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं तथा इसके सम्पूर्ण संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं एवं हृदयकी सभी गुत्थियाँ खुल जाती हैं—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

इस प्रकार ब्रह्मदर्शनके पश्चात् मनुष्यदेह कृतकृत्य हो ही जाती है। जो क्षणभर ब्रह्मविचारमें मन स्थिर करता है, उसका बड़ा महत्त्व है। शास्त्र कहते हैं—

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले सर्वाऽपि दत्ताऽवनिः
यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च सम्पूजिताः।
संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्॥

जिसका एक क्षण भी मन ब्रह्मविचारमें स्थिर हो गया, उसने मानो समस्त तीर्थोंके जलोंमें स्नान कर लिया, सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका उसे फल मिल गया, सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया, सम्पूर्ण देवताओंके पूजनका भी फल प्राप्त हो गया। अपने समस्त पितरोंका उसने संसारसे उद्धार कर लिया तथा वह स्वयं त्रैलोक्यमें पूज्य है। अतः मानवदेह प्राप्तकर ब्रह्मविचार अवश्य करना चाहिये, यही मानवदेहकी सार्थकता है।

'अधर्मी बलवान् होनेपर भी भयभीत रहता है'

(श्रीजितेन्द्रजी गर्ग)

श्रीमद्भगवद्गीताका एक प्रसंग है, जो हमें सन्मार्गकी ओर प्रेरित करता है तथा आत्मकल्याणमें प्रवृत्त करता है।

कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके शंख आदि बाजे बजे तो उनके शब्दका पाण्डवसेनापर कुछ भी असर नहीं हुआ, पर पाण्डवोंकी सात अक्षौहिणी सेनाके शंख बजे तो उनके शब्दसे कौरवसेनाके हृदय विदीर्ण हो गये, संजय धृतराष्ट्रसे कुरुक्षेत्रका वर्णन करते हुए कहते हैं—**'स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।'** (गीता १।१९) अर्थात् शंखध्वनिके भयानक शब्दने आपके पक्षवालोंके हृदय विदीर्ण कर दिये।

अब प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों हुआ? तो इसका समाधान यह है कि जिनके हृदयमें अधर्म, पाप, अन्याय नहीं है, अर्थात् जो धर्मपूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करते हैं, उनका हृदय मजबूत होता है, उनके हृदयमें भय नहीं होता। न्यायका पक्ष होनेसे उनमें उत्साह होता है, शूरवीरता होती है।

दुर्योधन आदिने पाण्डवोंको अन्यायपूर्वक मारनेका बहुत प्रयास किया था। उन्होंने छल-कपटसे अन्यायपूर्वक पाण्डवोंका राज्य छीना था और उनको बहुत कष्ट दिये थे। इस कारण उनके हृदय कमजोर हो गये थे।

श्रीरामचरितमानसमें भी इस प्रकारका एक उदाहरण आता है। लंकापति रावणसे त्रिलोकी डरती थी। वही रावण जब सीताजीका हरण करने जाता है, तब वह स्वयं भयभीत होकर इधर-उधर देखता है। उसकी स्थिति उस कुत्ते-जैसी हो गयी थी, जो किसी घरमें चोरीसे घुस रहा हो।

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं॥
सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥

इसलिये अन्याय, अधर्मयुक्त आचरण कभी न करना चाहिये।

साधकोंके प्रति—

शरणागतिकी विलक्षणता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

पारमार्थिक बातें एक-से-एक विलक्षण हैं! उनमें शरणागतिकी बात बहुत विलक्षण है! शरणागतिमें दो बातें सिद्ध होती हैं—एक तो ईश्वरवाद सिद्ध होता है और एक आश्रय लेनेका स्वभाव सिद्ध होता है। ईश्वरवाद कैसे सिद्ध होता है? कि प्रत्येक प्राणी किसी-न-किसीको अपनेसे बड़ा मानता है और उसका आश्रय लेता है। पशु-पक्षियोंमें भी यह बात देखी जाती है।

हम जब बूँदीमें रहते थे, तब एक रात हम सब सो रहे थे। रातमें वहाँ एक बघेरा (चीता) आया। वहाँ दो कुत्ते थे। बघेराको देखते ही वे कुत्ते डरते हुए झट हमारे पास आकर चिपक गये; क्योंकि बघेरा कुत्ते और गधेको खा जाता है। अतः भय लगनेपर पशु-पक्षी भी अपनेसे बड़ेका आश्रय लेते हैं। ऐसे ही जन्तुमात्र किसी-न-किसीका आश्रय लेते हैं। कोई बिल बनाकर रहता है, कोई घर बनाकर रहता है, कोई किसी तरहसे रहता है। जंगम प्राणी तो दूर रहे, स्थावर प्राणी भी अपनेसे बड़ेका आश्रय लेते हैं। जैसे कोई लता है, वह भी दीवार, वृक्ष आदिका सहारा लेकर ऊपर चढ़ती है।

जीवमात्रमें आश्रय लेनेकी स्वाभाविक शक्ति है। कोई गुरुका आश्रय लेता है, कोई ग्रन्थका आश्रय लेता है, कोई इष्टका आश्रय लेता है; किसी-न-किसीका आश्रय लेकर उससे रक्षा चाहता है, उसके अधीन होना चाहता है। इस प्रकार किसी-न-किसीका आश्रय लिये बिना कोई नहीं रहता और जिसका आश्रय लेता है, उसे बड़ा मानता है, तो ईश्वरवाद सिद्ध हो गया। जो ईश्वरको नहीं मानता, ऐसा नास्तिक पुरुष भी माँ-बापको बड़ा मानता है, किसीको विद्यामें बड़ा मानता है, किसीको आयुमें बड़ा मानता है; इस तरह किसी-न-किसीको बड़ा मानता ही है। विद्यामें, बुद्धिमें, योग्यतामें, जन्ममें (कि यह हमारेसे पहले जन्मा है) आदि किसी विषयमें किसीको भी अपनेसे बड़ा मान लिया तो ईश्वरवाद सिद्ध हो गया।

ईश्वर सर्वोपरि शक्ति है और सबसे बड़ा है। पातंजलयोगदर्शनमें लिखा है—'**पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्**' (१।२६) अर्थात् पहले जितने हो चुके हैं, उन सबका गुरु है—ईश्वर; क्योंकि उसका कालसे व्यवधान नहीं है। सबसे पहले होनेसे वह ईश्वर सबसे बड़ा है और सब उससे शिक्षा लेते हैं, उसके आश्रित होते हैं। इसलिये उस ईश्वरका ही आश्रय लेना चाहिये; परंतु एक ईश्वरका आश्रय न लेनेसे कइयोंका आश्रय लेना पड़ता है। कोई पदका आश्रय लेता है, कोई अपनी योग्यताका आश्रय लेता है, कोई अपनी बुद्धिका आश्रय लेता है, कोई अपने बलका आश्रय लेता है, कोई धनका आश्रय लेता है, कोई बेटे-पोतोंका आश्रय लेता है, इस प्रकार मनुष्य जिस-किसीका आश्रय लेता है, वह तो बड़ा हो जाता है और मनुष्य स्वयं छोटा हो जाता है, गुलाम हो जाता है। वह समझता है कि मेरे पास इतने रुपये हैं, मैं इतने रुपयोंका मालिक हूँ, पर मालिकपना तो वहम है, सिद्ध होता है गुलामपना! अपने पास रुपये हों तो वह अपनेको बड़ा मानता है और रुपये न हों तो अपनेको छोटा मानता है। जब वह रुपयोंसे अपनेको बड़ा मानता है, तब स्वयं छोटा सिद्ध हो गया न? बड़े तो रुपये ही हुए। स्वयंकी तो अप्रतिष्ठा ही हुई।

परमात्माका आश्रय लिये बिना सब आश्रय अधूरे हैं; क्योंकि परमात्माके सिवाय और कोई सर्वोपरि तथा पूर्ण नहीं है। रुपये, बेटे-पोते, पद, योग्यता, समाजका बल, अस्त्र-बल, शस्त्र-बल आदि सब-के-सब तुच्छ ही हैं और पूर्ण भी नहीं हैं। यदि एक पूर्ण परमात्माका आश्रय ले ले तो फिर और किसीका आश्रय नहीं लेना पड़ेगा। जो भगवान्‌के चरणोंका आश्रय ले लेता है, उसे फिर दूसरे आश्रयकी आवश्यकता ही नहीं रहती। सुग्रीवने भगवान् श्रीरामका आश्रय लिया तो भगवान्‌ने कह दिया—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

(रा०च०मा० ४।७।१०)

लोक-परलोकका सब तरहका काम सिवाय ईश्वरके कोई कर ही नहीं सकता। ऐसे सर्वोपरि ईश्वरको छोड़कर जो दूसरी तुच्छ वस्तुओंका सहारा लेता है, दूसरी तुच्छ वस्तुओंको लेकर अपनेमें बड़प्पनका अनुभव

करता है, वह एक तरहसे नास्तिक है—ईश्वरको न माननेवाला है। यदि वह ईश्वरको मानता तो उसे ईश्वरका ही सहारा होता।

भगवान्‌का सहारा लेनेवाला परतन्त्र नहीं रहता। एक विचित्र बात है कि पराधीन रहनेवाला पराधीन नहीं रहता; तात्पर्य यह है कि भगवान्‌के अधीन रहनेवाला पराधीन नहीं रहता; क्योंकि भगवान् 'पर' नहीं हैं। मनुष्य पराधीन तब होता है, जब वह 'पर' के अधीन हो अर्थात् धन, बल, विद्या, बुद्धि आदिके अधीन हो अर्थात् धन, बल, विद्या, बुद्धि आदिके अधीन हो। भगवान् तो अपने हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** इसलिये उनका आश्रय लेनेवाला पराधीन नहीं होता, सर्वथा स्वाधीन होता है, निश्चिन्त होता है, निर्भय होता है, निःशोक होता है, निःशंक होता है। दूसरोंके अधीन रहनेवालेको स्वप्नमें भी सुख नहीं होता—***'पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं'*** (रा०च०मा० १।१०२।५); परंतु भगवान्‌के अधीन रहनेवालेको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता। मीराबाईने कहा है—

ऐसे बर को क्या बरूँ, जो जन्मे अरु मर जाय।
बर बरिये गोपालजी, म्हारो चुड़लो अमर हो जाय॥

इस तरह केवल भगवान्‌का आश्रय ले ले तो सदाके लिये मौज हो जाय! स्वप्नमें भी किसीकी किंचिन्मात्र भी आवश्यकता न रहे! जब किसी-न-किसीका आश्रय लेना ही पड़ता है, तब सर्वोपरिका ही आश्रय लें, छोटेका आश्रय क्या लें? अतः सबसे पहले ही यह मान लें कि भगवान् हमारे और हम भगवान्‌के हैं—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

'माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।'

माँ कौन है? भगवान्। बाप कौन है? भगवान्। सखा कौन है? भगवान्। धन कौन है? भगवान्। विद्या क्या है? भगवान्। हमारे सब कुछ भगवान् ही हैं।

वाल्मीकि बाबाके यहाँ लव-कुशका जन्म हुआ था। सीताजीने लव-कुशको सब कुछ सिखाया। सीताजीने ही उन्हें युद्धविद्या सिखायी कि ऐसे बाण चलाओ। वे सीताजीको ही माँ मानते और सीताजीको ही बाप मानते। सब कुछ सीताजीको ही मानते थे। जब लव-कुशने रामाश्वमेधयज्ञका घोड़ा पकड़ा, तब पहले माँ सीताजीको याद करके प्रणाम किया, फिर युद्ध किया। युद्धमें उन्होंने विजय प्राप्त कर ली। वहाँ हनुमान्‌जी थे, अंगद भी थे, शत्रुघ्नजी भी थे, भरतका बेटा पुष्कर भी था, बड़े-बड़े महारथी थे। उन सबको लव-कुशने हरा दिया, उनके छक्के छुड़ा दिये और हनुमान्‌जी तथा अंगदको पकड़ लिया। उन्हें पकड़कर माँके पास ले आये और बोले कि हम दो बन्दर लाये हैं खेलनेके लिये। दोनोंकी पूँछ आपसमें बाँध दी। माँने कहा कि यह क्या किया तुमने? जैसे तू मेरा बेटा है, वैसे ही हनुमान् भी मेरा बेटा है। वे बोले कि हमने ठीक किया है, बेठीक नहीं किया है; आप कहो तो छोड़ देंगे। माँके कहनेसे उन्होंने दोनोंको छोड़ दिया। इस तरह माँ सीताजीको ही सर्वोपरि समझनेसे, उनका ही आश्रय लेनेसे छोटे-छोटे बालकोंने श्रीरामजीकी सेनापर विजय प्राप्त कर ली।

वाल्मीकिजी लव और कुशको श्रीरामजीकी राजसभामें ले गये। वहाँ उन्होंने वाल्मीकिजीकी सिखायी हुई रामायणको बहुत सुन्दर ढंगसे गाया। श्रीरामजी उन्हें इनाम देने लगे तो वे चिढ़ गये कि देखो, राजा कितना अभिमानी है! हमें देता है। हम कोई ब्राह्मण हैं? हमारे गुरुजीने कहा कि तुम क्षत्रिय हो, ब्राह्मण नहीं हो। हम लेनेवाले, माँगनेवाले नहीं हैं। फिर उन्हें समझाया गया कि ये तुम्हारे पूजनीय, आदरणीय पिताजी हैं, नहीं तो वे श्रीरामजीको कुछ नहीं समझते थे। उनकी दृष्टिमें तो माँ-बाप आदि जो कुछ हैं, वह सब सीताजी ही हैं। उनके लिये सीताजीके समान संसारमें कोई नहीं है। इसलिये मनुष्यको किसीका सहारा लेना हो तो सर्वोपरि भगवान्‌के चरणोंका ही सहारा लेना चाहिये—***'एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।'*** हमारे प्रभु हैं, प्रभुके हम हैं—यह हमारा अभिमान भूलकर भी कभी न जाय—

अस अभिमान जाइ जनि भोरें। मैं सेवक रघुपति पति मोरें॥

(रा०च०मा० ३।११।२१)

सज्जनो! कोई रुपयोंका सहारा लेता है, कोई बलका सहारा लेता है, कोई किसीका सहारा लेता है तो कोई किसीका, इस तरह क्यों दर-दर भटकते हो? जो अपने हैं, उन प्रभुका ही सहारा लो। अन्तमें उनसे ही काम चलेगा, और किसीसे नहीं चलेगा। भगवान्‌के सिवाय और सब कालका चारा है। सबको काल खा जाता है।

भगवान्‌के चरणोंकी शरण ले लो तो निहाल हो जाओगे। आज ही विचार कर लो कि मैं तो भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं, बस। सच्ची बात है, सिद्धान्तकी बात है, पक्की बात है। भगवान् सबका पालन-पोषण करते हैं, चाहे कोई भगवान्‌को माने या न माने, आस्तिक-नास्तिक कैसा ही क्यों न हो; क्योंकि भगवान् सब प्राणियोंमें समान हैं—**'समोऽहं सर्वभूतेषु'** (गीता ९। २९)। परंतु जो भगवान्‌का आश्रय ले लेता है, उसका तो कहना ही क्या है! उनके चरणोंका आश्रय लेनेसे तो मौज ही हो जाती है। आनन्द-ही-आनन्द हो जाता है।

धिन सरणो महराजको, निसिदिन करियै मौज।
रामचरण संसार सुख, दई दिखावै नौज॥

भगवान् संसारका सुख कभी न दिखायें। यह संसारका सुख ही फँसानेवाला है। इसीके लोभमें आकर आदमी भगवान्‌से विमुख हो जाता है, भगवान्‌का आश्रय छोड़कर सुखका आश्रय ले लेता है, अतः हमें संसारका सुख लेना ही नहीं है। हमें तो प्रभुके चरणोंकी शरण होना है। वास्तवमें तो सदासे ही हम भगवान्‌के और भगवान् हमारे हैं। उनकी शरण लेनी नहीं पड़ती। जैसे, बालकको माँका आश्रय लेना नहीं पड़ता। माँकी गोदीमें बैठकर बालक निर्भय हो जाता है; क्योंकि उसकी दृष्टिमें माँसे बढ़कर कोई नहीं है। ऐसे ही भगवान्‌से बढ़कर कोई नहीं है। अतः उनके चरणोंकी शरण लेकर निर्भय हो जाना चाहिये।

गृहस्थ-वेशमें परम वैरागी

(श्रीऋषिकुमारजी दीक्षित)

व्रजसन्तशिरोमणि पं० गयाप्रसादजीने अपने जीवनके अन्तिम ६५ वर्ष गिरिराज (गोवर्धन, जिला मथुरा)-की तलहटीमें झाड़ू लगाते हुए गुजार दिये। शरीरपर एक मारकीनकी धोती और एक अँगोछा ही उनकी शोभा थे। नंगे पैर, नंगे सिर, गर्मी, जाड़ा या बरसातमें एक ही बाना धारण करते थे। बिना दंड और गेरुआ वस्त्रके संन्यासी, छापा-तिलकके बिना ही परम वैष्णव गयाप्रसादजी व्रजवासियोंके 'गिरिराजवाले बाबा' हो गये।

फतेहपुर जनपदके गाँव कल्याणीपुरमें रामाधीन मित्रके घर कार्तिक शुक्ल षष्ठी वर्ष १८९२ में ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें पं० गयाप्रसादका जन्म हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही हुई। फिर अपनी मौसीके यहाँ एकउलामें विद्याध्ययन किया। वहाँ पं० गौरीदत्त त्रिपाठीसे उन्होंने यज्ञोपवीत एवं गायत्री मन्त्रकी दीक्षा ली। तभी उनके पिताजी जीविकोपार्जनके लिये परिवारको लेकर हाथरस (तत्समय जिला अलीगढ़) आकर बस गये। वर्ष १९३६ में पं० गयाप्रसाद श्रावणके अधिमासमें गोवर्धनमें गिरिराजकी सेवामें लीन हो गये। वे राधाकुण्डके पास मिर्ची महाराजके बगीचोंमें रहने लगे। पण्डितजीने अपना जीवन गिरिराजकी तलहटीमें झाड़ू लगाने और अपने लाडले बालकृष्णकी लीलाओंमें मग्न रहते हुए व्यतीत किया।

एक बार वृन्दावनमें रासलीला देखकर पण्डितजीके जीवनमें परिवर्तन आया। रासमण्डलीके साथ ही पण्डितजी नाथद्वारा (राजस्थान) गये। वहाँ श्रीकृष्ण एवं श्रीनाथजीमें एकरूपता समझकर उन्हींमें तन्मय हो गये। एक माहतक वहींपर उन्होंने आराधना की। करीब १०१ वर्षकी अवस्थामें गुरुपूर्णिमाके दिन पं० गयाप्रसादजी अस्वस्थ हुए। इस दौरान उनके अनुयायियोंने इलाजके लिये बाहर ले जानेकी कोशिश की, मगर पण्डितजी गिरिराज छोड़कर नहीं गये। कुछ दिन बाद भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी वर्ष सन् १९९४ ई०को पण्डितजी गिरिराज महाराजकी तलहटीमें अपने जीवन-धन प्रियतम प्रभु श्रीकृष्णकी नित्य लीलामें लीन हो गये। गौशालामें ही उनकी समाधि बना दी गयी। जय श्रीराधेकृष्ण!

कन्या-पूजन—एक आध्यात्मिक विज्ञान

(श्रीहर्षजी सिंघल)

कन्या-पूजन भारतीय शाक्त-सम्प्रदायकी उपासना-पद्धतिका एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यूँ तो हर स्त्री माँ भगवतीका ही साक्षात् स्वरूप है, इसमें भी कन्याका रूप अत्यन्त पवित्र और पूजनीय बताया गया है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

(दुर्गासप्तशती ११।५)

प्रायः २ से १० वर्षतककी नौ कन्याओंके पूजनका विधान है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) कुमारी, (२) त्रिमूर्ति, (३) कल्याणी, (४) रोहिणी, (५) कालिका, (६) शाम्भवी, (७) दुर्गा, (८) चण्डिका और (९) सुभद्रा। इन्हीं नाम-मन्त्रोंसे इनकी पूजा करनी चाहिये, यथा—**कुमार्यै नमः, त्रिमूर्तये नमः, कल्याण्यै नमः** आदि। इनका अपनी शक्तिके अनुसार गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, भक्ष्य, भोज्य तथा वस्त्राभूषणोंसे पूजन करना चाहिये। सम्पूर्ण मनोरथ-सिद्धिके लिये ब्राह्मण-कन्याका, यशके लिये क्षत्रिय-कन्याका, धनके लिये वैश्य-कन्याका और पुत्रके लिये शूद्र-कन्याका पूजन करना चाहिये। माँ भगवती दुर्गादेवी, कन्याओंसे ही घिरी हुई रहती हैं, जो नित्य-निरन्तर भगवतीकी परिचारिकाएँ अथवा योगिनियाँ हैं। दुर्गादेवीके ध्यानमें वर्णित है—

कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरा सेवितां।

(दुर्गासप्तशती ध्यान १२)

भारतीय समाजमें हर घरमें माताकी पूजा-उपासना होती है और नवरात्रोंमें तो विशेषरूपसे पूजन होता है। नवरात्रोंकी पूर्णता ही कन्या-पूजनके साथ होती है। माताने श्रीधर आदि अपने अनेकों भक्तोंको कन्यारूपमें ही दर्शन दिये हैं।

वे भगवती ही आदिकुमारी हैं, कन्याकुमारीके रूपमें वे ही भगवती पूजनीय हैं, यद्यपि आद्य शंकराचार्यके कथनानुसार माँके रूपका भेद जाना नहीं जा सकता।

न बाला न वृद्धा न कामातुरापि स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः।

(कालिकाष्टकम्)

कन्या-पूजनका श्रेष्ठकर्म आजकी सामाजिक स्थितिकी माँग है, कन्या-पूजन भ्रूण-हत्याके विरुद्ध एक आन्दोलन है। हमारे अन्तःकरणमें प्रत्येक स्त्रीके प्रति मातृभावका उदय हो सके, ऐसा एक प्रयोग है।

जरा विचार कीजिये, यदि हम अपने घरमें कन्या-पूजन करेंगे, तो हमारे बच्चे भी उन कन्याओंके प्रति जीवनभर श्रद्धास्पद रहेंगे। कहीं-न-कहीं वे उनके सहायतार्थ और रक्षार्थ प्रयासरत रहेंगे और उनकी सोचमें पवित्रता आयेगी। वे हर स्त्रीका सम्मान करेंगे और कन्या भ्रूण-हत्याका भी विरोध करेंगे। इसीलिये कन्यापूजन एक आध्यात्मिक विज्ञान है, जो हमको मानसिक और वैचारिक रूपसे सम्बल प्रदान करता है।

पूजनमें कन्याकी संख्या—अलग-अलग समयमें अलग-अलग स्थानोंपर कन्या-पूजनमें कन्याओंकी संख्यामें भेद है। विद्वानों एवं साधकोंका मानना है कि संख्या तो सामर्थ्य और श्रद्धाके अनुसार ही होनी चाहिये। कहीं-कहीं कन्याके साथ कुछ बटुकोंका भी गणपति, लांगुर या भैरवके रूपमें पूजन होता है, यह भी स्थानीय रीति है।

पूजन-विधि—

❀ सर्वप्रथम कन्याओंको श्रद्धा और प्रेमपूर्ण आमन्त्रण दें।

❀ घर अथवा पूजन-स्थानको स्वच्छ, पवित्र और सुगन्धित कर दें।

❀ जब कन्याएँ आयें तो माँ भगवतीका स्वरूप मानकर उनका आदर और भक्तिपूर्ण भावसे स्वागत करें।

❀ उन्हें शुद्ध आसन दें एवं हल्दीमिश्रित जलसे उनका पाद-प्रक्षालन करें।

❀ रोली, अक्षत और मौली आदिसे उनका भक्तिपूर्वक पूजन करें।

❀ उन्हें शुद्ध सात्त्विक भोजन करायें। सामर्थ्यके अनुसार उन्हें द्रव्य, वस्त्र आदि भेंट प्रदान करें।

❀ उनके चरण-स्पर्शकर उनसे माँ भगवतीका कृपास्वरूप आशीर्वाद ग्रहण करें।

श्रीसीताजीका वाल्मीकि-आश्रममें प्रवास

(प्रो० श्रीप्रभुनाथजी द्विवेदी)

श्रीरामके वनगमन-कालमें महर्षि वाल्मीकि चित्रकूटमें निवास कर रहे थे। (प्राचीन कालमें ऋषि-मुनि कहीं एक जगह स्थायी रूपसे निवास प्राय: नहीं करते थे—ऐसा इतिहास-पुराणके अनुशीलनसे ज्ञात होता है।) उस समय महर्षि वाल्मीकिके शिष्य मुनिवर भरद्वाज प्रयागमें रह रहे थे। प्रभु श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ शृंगवेरपुरमें गंगा पार करके प्रयाग पहुँचे और भरद्वाजके आश्रममें जाकर उनका दर्शन किया। मुनिवर भरद्वाजने उन्हें चित्रकूटमें निवास करनेका परामर्श दिया और तदनुसार सीता-लक्ष्मणसहित राम यमुना उतरकर चलते हुए चित्रकूट पहुँचे। चित्रकूटपर्वत तथा वनप्रान्तकी शोभा देखते हुए वे तीनों महर्षि वाल्मीकिके मनोरम आश्रममें प्रविष्ट हुए तथा तीनोंने उन्हें प्रणाम किया। धर्मज्ञ महर्षि वाल्मीकि उनके आगमनसे अतीव प्रसन्न हुए और उनका स्वागत करते हुए आदरपूर्वक बैठाया। तत्पश्चात् श्रीरामने महर्षि वाल्मीकिको अपना यथोचित परिचय देकर आश्रमके समीपमें निवास करनेका निश्चय किया।[1] महर्षि वाल्मीकिने उनका योगक्षेम किया।

वाल्मीकि रामायणके उत्तरकाण्डमें सीता-निर्वासनके प्रसंगमें श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मणको महर्षि वाल्मीकिके आश्रमकी अवस्थिति बतलाकर कहते हैं कि सीताको ले जाकर उसी आश्रमके निकट छोड़ आओ—

श्वस्तं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम्॥
आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज।
गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मन:॥
आश्रमो दिव्यसङ्काशस्तमसातीरमाश्रित:।
तत्रैतां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन॥
शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम।

(वा०रा०, उत्तरकाण्ड ४५। १६—१९)

उपर्युक्त उद्धरणसे ज्ञात होता है कि जो महर्षि वाल्मीकि राम-वनगमनके समय चित्रकूटस्थ आश्रममें उपस्थित थे, वे सीतानिर्वासनके समय पुन: अपने मूल आश्रममें निवास कर रहे थे, जो गंगाके पार तमसा नदीके सन्निकट अर्थात् प्रयागसे पूर्व और विन्ध्यवासिनी धाम (मीरजापुर)-के पश्चिम था। रामानुज लक्ष्मणने देवी सीताको ले जाकर वहीं छोड़ दिया और लौट गये। गर्भिणी देवी सीताको निश्चय ही महर्षि वाल्मीकिका संरक्षण प्राप्त होगा—ऐसा सोचकर ही श्रीरामने सीताको वहाँ वनमें निर्वासित कराया और आगे चलकर उनकी यह सोच सत्य ही प्रमाणित हुई। वहाँ निर्जन वनमें परित्यक्त अकेली सीता लक्ष्मणके लौट जानेपर करुण-क्रन्दन करने लगी।[2]

सीताको रोती हुई देखकर वहाँ खेल रहे कुछ मुनिकुमार भागे-भागे महर्षि वाल्मीकिके पास गये और उन्होंने महर्षिको प्रणाम करके सीताके रोनेका हाल सुनाया—'भगवन्! गंगाके किनारे एक स्त्री, जो महारानी-जैसी लग रही हैं, फूट-फूटकर रो रही हैं। वे अकेली हैं और उनका मुख म्लान हो रहा है। आप स्वयं चलकर देख लें। वे आपकी शरणमें आयी हुई-सी प्रतीत हो रही हैं। आप उनकी रक्षा करें।' मुनिकुमारोंकी बात सुनकर महर्षि वाल्मीकिने ध्यानके द्वारा सारी बातें जान लीं। वे शीघ्रतापूर्वक सीताके पास पहुँचे और उन्हें सान्त्वना देकर रोनेसे विरत किया।

सीता उनकी पुत्रीके समान थी। वे उसे आदरपूर्वक अपने आश्रममें ले गये। वाल्मीकि अत्यन्त कारुणिक

१-इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलि:। अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन्॥
तान् महर्षि: प्रमुदित: पूजयामास धर्मवित्। आस्यतामिति चोवाच स्वागतं तं निवेद्य च॥
(वा०रा०, अयोध्याकाण्ड ५६। १६-१७)

२-सा दु:खभारावनता यशस्विनी यशोधरा नाथमपश्यती सती। रुरोद सा बर्हिणनादिते वने महास्वनं दु:खपरायणा सती॥
(वा०रा०, उत्तरकाण्ड ४८। २६)
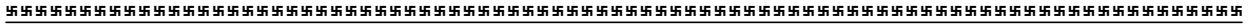
धर्मज्ञ थे। साधारण मनुष्य भी विपत्तिमें पड़े हुए असहायकी सहायता करना अपना धर्म समझता है और स्त्री तो सभीके लिये सहायताके योग्य होती है। महर्षि वाल्मीकि उदारचेता तपोधन हैं। वे महाराज दशरथके प्रिय मित्र हैं और अयोध्या तथा मिथिलाके राजपरिवारोंसे उनका सहज स्नेह है। श्रीरामके प्रति उनके अन्दर स्नेहके साथ ही पूज्य भाव भी है। वे निष्पाप सीता आपन्नसत्त्वा (गर्भवती) हैं—यह भी वे जान रहे हैं। ऐसी स्थितिमें उनके आश्रमके समीप लाकर छोड़ी गयी सीताकी उपेक्षा भला वे कैसे कर सकते हैं? सीताकी रक्षा वस्तुतः इक्ष्वाकुवंशके प्ररोहकी रक्षा है। महर्षि वाल्मीकिने इस दायित्वका भलीभाँति निर्वाह किया। आश्रमके समीप रहनेवाली तापसी स्त्रियोंने सीताके परिचयसे अनभिज्ञ होते हुए भी सहानुभूतिवश नारीधर्मका पालन करते हुए उनकी अच्छी तरह देखभाल की।

महाकवि कालिदासने रघुवंश महाकाव्यके चतुर्दश सर्गमें इस घटनाका वर्णन किया है। श्रीरामने लक्ष्मणको आदेश दिया कि सीताको तपोवन दिखानेके बहाने रथपर चढ़ाकर ले जाओ और वाल्मीकि-आश्रमके पास छोड़ आओ।

प्रजावती दोहदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव।
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजैनाम्॥

(रघुवंश १४। ४५)

अग्रज राजा रामकी आज्ञाका पालनकर लक्ष्मणके लौट जानेपर देवी सीताके रोनेका अत्यन्त कारुणिक वर्णन महाकविने किया है।[1] कालिदासने लिखा है कि उस समय 'कवि' (आदिकवि महर्षि वाल्मीकि) कुश और समिधाएँ लेने उधर ही वनमें गये हुए थे। सीताके रुदनकी ध्वनिका अनुसरण करते हुए वे उसके पास पहुँचे—

तामभ्यगच्छद रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।

(रघुवंश १४। ७०)

महर्षिने सीतासे कहा कि बेटी! मैं तुम्हारे बारेमें सब कुछ जानता हूँ। तुम्हारे श्वशुर और पिता मेरे मित्र हैं। तुम मेरे आश्रम किंवा, आश्रयमें सुखपूर्वक रहोगी। मुनिकन्याएँ तुम्हारा मन बहलायेंगी। इस प्रकार सान्त्वना देकर वे सीताको सायंकाल अपने आश्रममें ले आये।

अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं तां
वाल्मीकिरादाय दयार्द्रचेताः।
सायं मृगाध्यासित वेदिपार्श्वं
स्वमाश्रमं शान्तमृगं निनाय॥

(रघुवंश १४। ७९)

दयासे द्रवित चित्तवाले महर्षिने सीताको तापसियोंको सौंप दिया। यथासमय सीताने दो पुत्रोंको जन्म दिया वहीं महर्षिके आश्रममें।[2]

वाल्मीकिने उनका यथाविधि संस्कार करके दोनों बालकोंका नाम रखा—कुश और लव। उन्हें अंगों-सहित वेदोंका अध्ययन करानेके पश्चात् अपनी कृति आदिकाव्य रामायणकी शिक्षा गान-पद्धतिसे प्रदान की।

रामायणके अनुसार, लवणासुरका वध करनेके लिये जानेवाले रामानुज श्रीशत्रुघ्न मथुरा जाते हुए मार्गमें महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें रात्रि-विश्रामके लिये रुके थे। उन्होंने अयोध्यासे चलनेके तीसरे दिन अपराह्णके पश्चात् वाल्मीकि-आश्रममें प्रवेश किया और महर्षिका अभिवादन करके उनसे आश्रममें रात्रि-विश्रामकी अनुमति माँगी। महर्षि वाल्मीकि बहुत प्रसन्न हुए और स्वागत करते हुए बोले—'सौम्य! यह आश्रम रघुवंशियोंके लिये अपना ही घर है। तुम निःशंक होकर मेरी ओरसे पाद्य, अर्घ्य और आसन स्वीकार करो।'[3]

१-तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टि पथं व्यतीते। सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः॥
नृत्तं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः। तस्या प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि॥
(रघु० १४। ६८-६९)

२-महाकवि भवभूतिने उत्तररामचरितमें भगवती गंगाके आश्रममें देवी सीताके पुत्रोंके जन्मकी बात कही है और गंगा दोनों पुत्रोंको स्वयं लाकर महर्षि वाल्मीकिको पालन-पोषणहेतु समर्पित करती हैं।

३-शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः। प्रत्युवाच महात्मानं स्वागतं ते महायशः॥
स्वमाश्रममिदं सौम्य राघवाणां कुलस्य वै। आसनं पाद्यमर्घ्यं च निर्विशङ्कः प्रतीच्छ मे॥ (वा०रा०, उत्तरकाण्ड ६५। ५-६)

सत्कार ग्रहण करके शत्रुघ्नने फल-मूलादि वन्य आहार ग्रहण किया। महर्षिने प्रसंगगत उन्हें अयोध्यानरेश सुदासपुत्र महाराज कल्माषपादकी कथा सुनायी। संयोगत: उसी रात सीताने दो पुत्रोंको जन्म दिया। शत्रुघ्न इस वार्तासे अतिहर्षित हुए और प्रात:काल देवी सीताका पुत्रोंसहित दर्शन करके वे महर्षि वाल्मीकिसे विदा ले प्रस्थान कर गये।

महर्षि वाल्मीकिका शत्रुघ्नके प्रति यह सद्व्यवहार उनके चरित्रके उत्कर्षको प्रमाणित करता है। वे उदार थे और उनका हृदय विशाल था। सीतानिर्वासनके कारण उनके अन्दर रघुकुलके प्रति कोई मालिन्य अथवा रोष न था।

लवणासुरके वधके बारह वर्ष पश्चात् श्रीशत्रुघ्न पुन: वाल्मीकि-आश्रम होते हुए अयोध्या पहुँचे। महर्षि वाल्मीकिने शत्रुघ्नके धर्ममय वीरोचित कार्यकी बहुत प्रशंसा की और अपने आश्रममें उनका यथोचित सत्कार किया।

श्रीरामके द्वारा अश्वमेध-यज्ञके अनुष्ठानकी वार्ता विदितकर महर्षि वाल्मीकि कुश-लव प्रभृति शिष्यों और देवी सीताके साथ अयोध्यापुरी गये और वहाँ समागत ऋषि-मुनियोंके परिसरके समीप ही आवास कल्पितकर रहे। उन्होंने इस अवसरपर अयोध्याकी वीथियोंमें रामायणका सस्वर गायन करनेके लिये कुश-लवको आदेश दिया और उन्होंने गुरुकी आज्ञासे नित्य सस्वर गायन करके रामायणको पुरवासियोंको सुनाना आरम्भ किया। महर्षि वाल्मीकिने उन दोनों कुमारोंको निर्देश दिया कि यदि कोई तुम्हारा परिचय पूछे तो मात्र यही बताना कि हम महर्षि वाल्मीकिके शिष्य हैं। यदि श्रीराम तुम्हें अपनी सभा अथवा यज्ञमें बुलवायें तो वहाँ जाकर रामायण अवश्य सुनाना और सभीसे विनय तथा आदरके साथ वार्तालाप करना।

श्रीरामको ज्ञात हो गया कि ये दोनों मुनिकुमार नहीं, अपितु सीताके ही पुत्र हैं और वह देवी सीता निश्चय ही महर्षि वाल्मीकिकी सन्निधिमें यहाँ आयी हैं, तो उन्होंने वाल्मीकिसे निवेदन किया कि वे सीतासहित यज्ञस्थलमें पधारें तथा सीता समस्त पौर-जानपदोंके समक्ष अपनी विशुद्धि प्रमाणित करें। तब महर्षि वाल्मीकि जनकनन्दिनी सीताके साथ वहाँ गये और उन्होंने श्रीरामसहित सबको बताया कि कुश और लव जानकीके गर्भसे उत्पन्न हुए जुड़वाँ पुत्र श्रीरामके ही हैं। ये देवी सीता सर्वथा निष्पाप हैं—यह जानकर ही मैंने इन्हें अपने आश्रममें प्रवेश दिया। मैंने हजारों वर्ष तपस्या की है; यदि सीतामें कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्याका फल न मिले। मैंने मन, वाणी और क्रियाओंद्वारा कभी कोई पाप नहीं किया है। यदि जानकी निष्पाप हो तभी मुझे अपने पापशून्य कर्मोंका पुण्यफल प्राप्त हो। मैंने कभी असत्य-भाषण नहीं किया है। मैं आप सबको विश्वास दिलाता हूँ कि यह देवी सीता पतिव्रता एवं निर्दोष है।[१]

महर्षि वाल्मीकि प्रचेता (वरुण)-के दशम पुत्र हैं। इन्होंने अपनी योगसिद्धिसे सम्पूर्ण रामचरित किंवा, सीताचरितको प्रत्यक्ष करके आदि महाकाव्य 'रामायण'का प्रणयन किया, जिसमें वे स्वयं भी एक महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। रामायणकी रचनाद्वारा महर्षि वाल्मीकिने विश्व-मानवताका अचिन्त्य बहुमूल्य उपकार किया है।

रामकथाके इस महानायकके विषयमें रामकथाके महागायक गोस्वामी तुलसीदासके वचन भी स्पृहणीय हैं—

१-महर्षि वाल्मीकि विशुद्ध विज्ञान (सिद्ध वैज्ञानिक) हैं—**वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ**। कवीश्वर अर्थात् आदिकवि महर्षि वाल्मीकि।

२-बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।

(रा०च०मा० १। १४ घ)

३-जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥

(रा०च०मा० १। १९। ५)

४-उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

(रा०च०मा० २। १९४। ८)

१-बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता। नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली॥
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम्। तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि॥ (वा०रा० उत्तरकाण्ड ९६। २०-२१)

गायत्री मन्त्र—एक विवेचन

(श्रीहितेशजी मोदी, एम०बी०ए०)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋग्वेद ३।६२।१०; शुक्ल यजुर्वेद ३।३५, २२।९, ३६।३)

गायत्री वेदोंमें प्रयुक्त एक छन्द है। चौबीस अक्षरोंसे निर्मित छन्दको गायत्री कहते हैं। इसमें कुल तीन पाद अथवा चरण होते हैं। प्रत्येक चरणमें आठ अक्षर होते हैं। कुल मिलाकर चौबीस अक्षर होते हैं। यह सविताका मन्त्र है। इसमें गायत्री छन्दका प्रयोग होनेके कारण इसको गायत्री-मन्त्र कहा जाता है।

गायत्री वेदमाता है। गायत्री महामन्त्र एक अगाध समुद्र है, जिसके गर्भमें छुपे रत्नोंका शोध करना सरल कार्य नहीं है। गायत्रीके चौबीस अक्षरोंमें ज्ञान-विज्ञानका महान् भण्डार छुपा हुआ है। इसके प्रत्येक अक्षरमें इतना दार्शनिक तत्त्वज्ञान समाहित है, जिसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। विभिन्न ऋषि-महर्षियोंने गायत्री मन्त्रका भाष्यार्थ किया है और अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार गायत्रीके पदोंके अर्थ किये हैं।

मन्त्रोंमें शक्ति होती है। मन्त्रोंके अक्षर शक्ति-बीज कहे जाते हैं। मन्त्रोंकी शब्द-रचना ऐसी होती है कि जिसके विधिपूर्वक उच्चारण एवं प्रयोगसे अदृश्य शक्ति-तरंगें उत्पन्न होती हैं। गायत्री महामन्त्रमें गूढ़ महाविद्याएँ समाहित हैं। इन महाविद्याओंका अनुसन्धान करना विशिष्ट व्यक्तियोंका कार्य है। यह विषय सर्वसाधारण जनका नहीं है। सामान्य जनके लिये जानने एवं उपयोगमें लानेयोग्य गायत्रीका जो मन्त्रार्थ है, वह इस प्रकार है।

गायत्री मन्त्रका अन्वय—**ॐ भूः भुवः स्वः तत् सवितुः देवस्य वरेण्यं भर्गः धीमहि, यः नः धियः प्रचोदयात्।** ॐ—गायत्री मन्त्रसे पहले 'ॐ' लगानेका विधान है। ॐकारको ब्रह्म कहा गया है—**ॐ ब्रह्मैवेति** (भट्टोजि दीक्षितकृत गायत्री भाष्य)। वह परमात्माका स्वयंसिद्ध नाम है। 'ॐ'को परमात्माका वाचक कहा गया है। उसे प्रणव कहा जाता है। प्रणव परब्रह्मका नाम है—**तस्य वाचकः प्रणवः** (पातंजल योगदर्शन १।२७)। प्राणको परमात्मामें लीन करनेके कारण इसे 'प्रणव' कहा गया है—**प्राणान्सर्वान्परमात्मानि प्रणाययतीत्येतस्मात्प्रणवः** (अथर्वशिखोपनिषद्)। वेदका आरम्भ 'ॐ' से किया जाता है—**ओङ्कारः पूर्वमुच्चार्यस्ततो वेदमधीयते।** इसलिये गायत्री मन्त्रसे पहले भी 'ॐ' लगाया जाता है।

ओंकार सब मन्त्रोंका कारण है; ओंकारसे व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं और व्याहृतियोंसे तीन वेद उत्पन्न हुए—

सर्वेषामेव मन्त्राणां कारणं प्रणवः स्मृतः।
तस्मात् व्याहृतयो जातास्ताभ्यो वेदत्रयं तथा॥

(वृद्धहारीत ३।८५-८६)

ओंकार अर्थात् ध्वनि मन्त्रोंका सेतु है। बिना प्रणवके मन्त्रोंमें सफलता प्राप्त करना अशक्य है। मन्त्रोंमें प्रथम ओंकाररूप सेतुका उच्चारण करनेसे मन्त्ररूपी शक्ति-धाराको पार किया जा सकता है।

ॐकारं विंदुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥

भूः भुवः स्वः—भूः-पृथ्वीलोक; भुवः-अन्तरिक्षलोक; स्वः-स्वर्गलोक।

गायत्री मन्त्रमें ॐकार के बाद 'भूः भुवः स्वः'—यह तीन महाव्याहृतियाँ आती हैं। ये महारहस्यात्मक हैं। यह गायत्री मन्त्रके बीज हैं। गायत्री मन्त्रमें 'ॐ'के बाद 'भूः भुवः स्वः' लगाकर ही मन्त्रका जप करना चाहिये। बीजमन्त्र मन्त्रोंके जीवरूप होते हैं। बिना बीजमन्त्रका मन्त्र-जप करनेसे वे साधनाका फल नहीं देते। यह तीन व्याहृतियोंका त्रिक अनेक अर्थोंका बोधक है। इस विवरणमें '**भूः भुवः स्वः**' का अर्थ तीन लोक—पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग लिया गया है।

भूर्भूमिलोकः भुवः भुवर्लोकः अन्तरिक्षं स्वः स्वर्लोकः। एवमुपरिक्रमेणावस्थितान् लोकानभिव्याप्यावतिष्ठननोऽसौ भर्गः एतांस्त्रींल्लोकानेव प्रदीपवत् प्रकाशयतीत्यर्थः। (रावणभाष्य) अर्थात् भूः पृथ्वीलोक है। भुवः भुवर्लोक अन्तरिक्ष है। स्वः

स्वर्गलोक है। इस प्रकार ऊपर क्रमशः स्थित लोकोंमें व्याप्त होकर वह भर्ग इन तीन लोकोंको दीपकके समान प्रकाशित करता है। **भूरिति भूर्लोकः भुवः इत्यन्तरिक्षम्। स्वरिति स्वर्लोकः।** (ब्रह्मपुराण) अर्थात् भूःसे पृथ्वीलोक, भुवःसे अन्तरिक्ष और स्वःसे स्वर्गलोक जानना चाहिये।

व्याहृतियाँ सात हैं—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तप और सत्यम्। यह व्याहृतियाँ सात ऊर्ध्व लोकोंका बोध कराती हैं। शास्त्रानुसार चौदह भुवन कहे गये हैं। सात अधोलोक और सात ऊर्ध्वलोक। सात अधोलोक—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पाताल, और रसातल। यह सातों अधोलोक अन्धकारमय हैं। वहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँचता।

असुर्या नाम ते लोकाऽअन्धेन तमसावृताः।

(शुक्ल यजुर्वेद ४०। ३)

सात ऊर्ध्व लोकोंमें से तीन—भूः, भुवः एवं स्वः लोकको सूर्य प्रकाशित करता है। अन्य चार लोक महः, जनः, तपः एवं सत्यम् लोकको सूर्य प्रकाशित नहीं करता। वे स्वयंप्रकाशित हैं। वहाँ अन्धकारका प्रवेश नहीं है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

(कठोपनिषद् २। २। १५ एवं मुण्डकोपनिषद् २। २। १०)

गायत्री मन्त्र सूर्यपरक होनेसे इसमें सूर्य उद्भासित तीन लोक—भूः, भुवः एवं स्वः ही लिये गये हैं।

तत्=उसका। **तत्सवितुः**=तस्य सवितुः। सः सविता इति तत्सवितृ (कर्मधारय समास)। 'तत्/तद्' (पुल्लिंग) सर्वनामका षष्ठी विभक्ति एकवचन होता है 'तस्य', जिसका अर्थ है उसका।

तत् कहते हैं 'वह' या 'उस'को। 'तत्' शब्द किसीकी ओर संकेत करनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है। गायत्री मन्त्र 'तत्' शब्दसे प्रारम्भ होता है। गायत्री मन्त्रमें 'तत्' शब्द परमात्मा, ईश्वर या सविता (सूर्य) देवका संकेत करता है। महावाक्य 'तत्त्वमसि' (छान्दोग्योपनिषद् ६। ८। ७)-में भी 'तत्' शब्दद्वारा परमात्माका संकेत किया गया है।

सूर्यमण्डलमें स्थित अनुपम तेज, जिसे उपनिषदोंमें संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारणभूत कहा गया है, 'तत्' शब्दसे उस तेजका संकेत किया गया है। तत् शब्द स्वयंसिद्ध सब भूतोंमें स्थित परब्रह्मके लिये प्रयुक्त होता है।

सवितुः—सविता (सूर्य)-का/के/की।

'सवितृ' (पुल्लिंग) नामका षष्ठी विभक्ति एकवचन होता है 'सवितुः', जिसका अर्थ है सविताका/के/की। सविता शब्द की निष्पत्ति 'सु' धातुसे हुई है, जिसका अर्थ है—उत्पन्न करना, गति देना तथा प्रेरणा देना।

गायत्री मन्त्रके देवता सविता हैं। सविता शब्द सूर्यका पर्यायवाचक है। **भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः** (अमरकोष १। ३। ३८)। **सवितुरिति सविता आदित्ययोयः** (ब्रह्मपुराण)। परमात्माकी अप्रत्यक्ष शक्ति, जो तेजके रूपमें हमारी स्थूल दृष्टिके सामने आती है, वह सूर्य है।

सविता कहते हैं—तेजस्वीको, प्रकाशवान्को, उत्पन्नकर्ताको। परमात्माकी अनन्त शक्तियाँ हैं, उसके अनेक रूप हैं। उसमें तेजस्वी शक्तियोंको सविता कहा जाता है।

सविता सर्वभूतानां सर्वं भावश्च सूयते।
सृजनात्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते॥

(बृहद्योगियाज्ञवल्क्य ९। ५५)

अर्थात् सविता प्राणियोंको उत्पन्न करता है और समग्र भावोंका उत्पादक है। उत्पन्न करनेसे एवं प्रेरक होनेसे सविता नाम कहा गया है।

देवस्य—देवका/के/की।

'देव' (पुल्लिंग) शब्दका षष्ठी विभक्ति एकवचन होता है 'देवस्य', जिसका अर्थ है देवका/के/की। निरुक्तकार यास्कने 'देव' शब्दको दान, दोपन और द्युस्थान-गत होनेसे निकाला है।

'देव' शब्द दिव्यताके अर्थमें प्रयुक्त होता है। देव कहते हैं—दिव्यको, अलौकिकको, असामान्यको। यहाँ यह ज्ञात रहे कि सविता (सूर्य) शब्दसे स्थूल सूर्यपिण्ड (जड़तत्त्व)-का निर्देश नहीं है। किन्तु सविता (सूर्य) शब्दसे सूर्यमण्डलके अधिष्ठातृदेवता या सूर्यमण्डलान्तर्गत परमात्मा (चेतनतत्त्व)-का निर्देश है। देव (देवस्य) शब्द इसीका द्योतक है। यथा—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

(तन्त्रसार एवं बृहत्पाराशरस्मृति)

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥

(भविष्यपुराण)

वरेण्यं—वरण करनेयोग्य, श्रेष्ठ।

'वृ' धातुमें अनीयर् प्रत्यय लगानेसे 'वरणीय' (नपुंसकलिङ्ग) विशेषण बनता है, जिसका प्रथमा विभक्ति एकवचन होता है 'वरणीयम्'। उसका आर्षरूप होता है 'वरेण्यम्'।

'वरेण्यम्' कहते हैं—वरण करनेयोग्यको, श्रेष्ठको, ग्रहण करनेयोग्यको, धारण करनेयोग्यको। जो तत्त्व हमें सत्, चित्, आनन्द, अध्यात्म, धर्मपथपर अग्रसर करे, वह वरेण्य है। गायत्री मन्त्रद्वारा हम ईश्वरीय सत्तासे वह तत्त्व ग्रहण करते हैं, जो वरेण्य है, श्रेष्ठ है, ग्रहण करनेयोग्य है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि गायत्री छन्दमें ८,८,८ के क्रमसे २४ अक्षर होने चाहिये, परंतु गायत्री मन्त्रके पहले पाद '**तत्सवितुर्वरेण्यं**' में ७ अक्षर ही हैं। इसलिये शास्त्रानुसार गायत्री मन्त्र जप/अनुष्ठानमें '**वरेण्यं**' के स्थान पर '**वरेणियं**' उच्चारण करना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रथम पादमें ८ अक्षर पूर्ण हो जायँगे। 'वरेण्यं' उच्चारण करनेपर गायत्री मन्त्रमें तेईस अक्षर ही होते हैं। इससे गायत्री मन्त्र अपूर्ण रहता है और अनुष्ठानका पूर्ण फल प्राप्त नहीं होता। 'वरेणियं' उच्चारण करनेपर चौबीस अक्षर पूर्ण होते हैं और अनुष्ठानका पूर्ण फल प्राप्त होता है।

भर्गः—तेज/प्रकाश।

'भर्गस्' (नपुंसकलिंग) नामका प्रथमा विभक्ति एकवचन होता है 'भर्गः', जिसका अर्थ है तेज अथवा प्रकाश।

भर्गका अर्थ है तेज, प्रकाश। **भर्गस्तेजः प्रकाशः** (निरुक्त)। गायत्री मन्त्रमें भर्गका तात्पर्य है सूर्यमण्डलके अन्दर उपस्थित ईश्वरीय तेज। **भृज् घञ् आदित्यान्तर्गते ऐश्वर्यं तेजसि** (सायणभाष्य)। यह भर्ग कैसा है? जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग इन तीन लोकोंमें व्याप्त है और इन तीन लोकोंको प्रकाशित करता है। इसका वर्णन 'भूः भुवः स्वः' के विवेचनमें हो चुका है।

स्थूल रूपसे भर्गका तात्पर्य अन्धकारके नाशक तेज/प्रकाशसे है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे भर्ग अज्ञानरूपी अन्धकारका नाशक है। अज्ञान अन्धकारका नाश करनेवाली परमात्माकी शक्तिको 'भर्ग' कहते हैं।

धीमहि—हम सब ध्यान करते हैं।

यह क्रियापद है। 'धी/ध्यै' (आत्मनेपदी) धातुका विधिलिङ् लकार उत्तमपुरुष बहुवचनका आर्षरूप होता है 'धीमहि', जिसका अर्थ है हम सब ध्यान करते हैं।

'ध्यै' धातुसे 'धीमहि' शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है चिन्तन करना, ध्यान करना। **धीमहि ध्यायेम चिन्तयाम** (रावणभाष्य)। ध्यान करनेसे चित्तकी बिखरी वृत्तियोंको एक जगह एकत्रित किया जाता है। इस अभ्यासको योगसाधना कहते हैं।

वैदिक वाङ्मयमें स्वके स्थानपर विश्वके कल्याणपर बल दिया जाता है। व्यष्टिके स्थानपर समष्टिके कल्याणपर बल दिया जाता है। यथा—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

गायत्री मन्त्रमें भी अपने हितके स्थानपर सबके हितको महत्त्व दिया गया है। इस कारणसे यहाँ सबके द्वारा ध्यान करना एवं सबको फलप्राप्ति (धियः)-का निर्देश है।

यः—जो।

'यत्/यद्' (पुल्लिंग) सर्वनामका प्रथमा विभक्ति एकवचन होता है 'यः', जिसका अर्थ है जो।

'तत्' शब्दके प्रयोगसे 'यत्' शब्दका प्रयोग लक्षित होता है—**तच्छब्दः प्रयोगादेव यच्छब्द प्रयोग उपभ्यते** (रावणभाष्य)। लिंग व्यतिरेकसे 'यः' शब्द 'यत्' बन जाता है—**यः इति लिङ्गव्यत्ययः यत्** (सायणभाष्य)।

गायत्री मन्त्रके पूर्वार्धमें 'तत्' शब्दसे जिसका संकेत किया गया है, उसका संकेत उत्तरार्धमें 'यः' शब्दसे हुआ है। गायत्री मन्त्रमें 'यः' का संकेत परमात्मा, ईश्वर या सविता (सूर्य)-देवके लिये किया गया है।

नः—हमारा/हमारी (हम सबका/की)।

'अस्मत्/अस्मद्' (मैं) उत्तमपुरुष वाचक सर्वनाम है। उसका षष्ठी विभक्ति बहुवचन होता है 'अस्माकम्' अथवा 'नः' जिसका अर्थ है हमारा/हमारी अथवा हम सबका/की। संस्कृत साहित्यमें 'नः'का प्रयोग 'अस्माकम्' के स्थानपर किया जाता है।

गायत्री मन्त्रमें परमात्मासे सद्बुद्धि (धियः)-की याचना की गयी है, किंतु वह मात्र स्वयंके लिये नहीं परंतु सबके लिये है। इसका निदर्शन 'धीमहि'के विवेचनमें किया गया है। 'धीमहि' शब्दद्वारा सबके द्वारा ध्यान किया गया है। इसलिये फलप्राप्ति भी सबको होनी चाहिये, जिसका निर्देश 'नः' शब्दसे हुआ है।

धियः—सद्बुद्धियोंको।

'धी'का अर्थ होता है सद्बुद्धि। 'धी' (स्त्रीलिंग) नामका द्वितीया विभक्ति बहुवचन होता है 'धियः', जिसका अर्थ है सद्बुद्धियोंको। 'धीमहि' एवं 'नः' द्वारा बहुवचनका प्रयोग हुआ है, इस कारणसे यहाँ भी बहुवचन (धियः)-का प्रयोग हुआ है।

गायत्री मन्त्रके पूर्वार्धमें सवितादेवके श्रेष्ठ तेजका ध्यान किया गया। उस ध्यानका हेतु क्या है? यह उत्तरार्धमें स्पष्ट किया गया है। वह हेतु है—सद्बुद्धि (धी)-की प्राप्ति। गायत्रीकी प्रतिष्ठाका अर्थ है—सद्बुद्धिकी प्राप्ति।

धी और बुद्धि—इन दो शब्दोंमें अन्तर है। बुद्धि-सद्बुद्धि भी हो सकती है और दुर्बुद्धि भी हो सकती है। व्यक्ति अपनी बुद्धिको सत्कर्मोंमें भी लगा सकता है और दुष्कर्मोंमें भी लगा सकता है। गायत्री मन्त्रमें केवल बुद्धिके लिये प्रार्थना नहीं की गयी है। गायत्री मन्त्रका लक्ष्य सद्बुद्धि (धी) प्राप्त करना है।

धी और बुद्धिमें वही अन्तर है, जो श्री और लक्ष्मीमें होता है। लक्ष्मी अच्छे-बुरे किसी भी मार्गसे प्राप्त की जा सकती है। चोरी-डकैती, छल-कपट, अप्रामाणिकतासे भी लक्ष्मी प्राप्त की जा सकती है, परंतु श्री स्वधर्माचरणद्वारा प्रामाणिकतासे ही प्राप्त होती है। लक्ष्मी चंचल है किन्तु श्री स्थिर है।

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भुवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥

प्रचोदयात्—प्रेरित करें।

यह क्रियापद है। 'चुद्' धातुमें अधिकतासूचक 'प्र' उपसर्ग लगानेसे 'प्रचुद्' धातु बनती है। चुद्/प्रचुद् धातु प्रेरणा करनेके अर्थमें प्रयोजित होती है। **चोदयति प्रेरयति** (महीधरभाष्य)। **प्रचोदयात् प्रेरयति** (सायण भाष्य)। 'प्रचुद्' (परस्मैपदी) धातुका आशीर्लिङ्-लकार अथवा लेट्-लकार (केवल वेदोंमें प्रयुक्त) प्रथम पुरुष एकवचनका आर्षरूप होता है 'प्रचोदयात्', जिसका अर्थ है प्रेरित करें।

गायत्री मन्त्रमें सवितादेवके श्रेष्ठ तेजके ध्यानद्वारा सद्बुद्धिकी याचना परमात्मासे की गयी है, परंतु वह दीन-हीन विधिसे नहीं, अपितु वैदिक संस्कृतिके अनुसार आत्मगौरवपूर्वक। गायत्री मन्त्रमें 'प्रचोदयात्' शब्दद्वारा आत्मगौरवकी सम्पूर्ण रक्षा की गयी है। 'प्रचोदयात्' शब्दद्वारा परमात्मासे सद्बुद्धिको प्रेरणा देनेकी याचना की गयी है। वे हमारी सद्बुद्धिको प्रेरित करें। भारतीय संस्कृति कर्मवादकी संस्कृति है। वेदोंमें ईश्वरसे जो प्रार्थनाएँ की गयी हैं, उसमें ईश्वरका आशीर्वाद, मार्ग दिखाने, नेतृत्व देनेकी प्रार्थना की गयी है। भारतीय संस्कृतिमें कर्मके साथ फल जोड़ा गया है; प्रयत्नके बाद सफलता होती है। मनुष्य शक्तियोंका भण्डार है। वह कुछ भी प्राप्त करनेका सामर्थ्य रखता है। उसे जरूरत है केवल प्रेरणाकी, जिससे बुद्धि शुद्ध हो जाय। सद्बुद्धि आनेसे वह संसारका कोई भी ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है। गायत्री मन्त्रमें सद्बुद्धिके लिये नहीं, अपितु सद्बुद्धिकी प्रेरणा, प्रोत्साहन, आशीर्वादके लिये प्रार्थना की गयी है। सद्बुद्धि भी स्वयंके प्रयत्नसे ही आती है। 'प्रचोदयात्' शब्द यही प्रेरणाका बोधक है।

उपर्युक्त विवेचनके अनुसार गायत्री मन्त्रका सर्वजनसुलभ अर्थ इस प्रकार होता है—ॐ पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्गलोकको प्रकाशित करनेवाले उस सविता (सूर्य)-देवके वरण करनेयोग्य (श्रेष्ठ) तेजका हम सब ध्यान करते हैं, जो (वे) हमारी (हम सबकी) सद्बुद्धियोंको प्रेरित करें।

सन्त श्रीयोगत्रयानन्दजीके वचनामृत

(संकलन—श्रीनकुलेश्वरजी मजूमदार)

[श्रीश्रीभार्गव शिवरामकिंकर योगत्रयानन्दजी काशीमें एक बड़े सर्वशास्त्रनिष्णात सिद्ध महात्मा हो गये हैं। इनके सेवक इन्हें एक ही साथ भृगु, शिव और रामका स्वरूप तथा ज्ञान, भक्ति एवं योगकी प्रतिमूर्ति मानते थे। परंतु सर्वसाधारणमें आप 'बाबा' के नामसे ही विख्यात थे। जिनको 'बाबा' के श्रीचरणोंकी शरण लेनेका सौभाग्य मिला है, वे ही जानते हैं कि बाबा कितने उच्च कोटिके महापुरुष थे। काशीके प्रसिद्ध महात्मा श्रीहरिहरस्वामीजीके नामपर स्थापित श्रीहरिहरविद्यालयके हेडमास्टर भक्तप्रवर श्रीनकुलेश्वर मजूमदार विद्यानिधि महोदय बाबाके कृपापात्र शिष्य थे। आपपर बाबाकी बड़ी कृपा थी और समय-समयपर बाबाने आपको अनेक उपदेश दिये थे। उन्हींमेंसे कुछ उपदेशोंको 'बाबाके वचनामृत' के नामसे श्रीमजूमदार महोदयने 'कल्याण' के पाठकोंके लाभके लिये प्रकाशनार्थ भेजनेकी कृपा की थी, जो कल्याणमें प्रकाशित भी हुए थे। आत्मकल्याणके जिज्ञासु साधकोंके लिये विशेष उपयोगी होनेके कारण उन्हें पुनः प्रकाशित किया जा रहा है—सम्पादक]

प्रश्न—मनुष्य सबसे बढ़कर सुखी कब होता है?

उत्तर—जब उसे भगवान्‌के दर्शन होते हैं।

प्रश्न—भगवान्‌के दर्शन किसको होते हैं?

उत्तर—जो निर्मल होता है।

प्रश्न—निर्मल कैसे हुआ जा सकता है?

उत्तर—जो निर्मल हैं, उनका संग करनेसे।

प्रश्न—निर्मल कौन हैं?

उत्तर—जो परम पवित्र भगवान्‌का संग प्राप्त करते हैं, वे महापुरुष साधुगण ही निर्मल हैं।

प्रश्न—साधुसंग कैसे मिलता है?

उत्तर—बहुत जन्मोंके पुण्यवशतः भगवान्‌की दयासे ही साधुसंग होता है।

प्रश्न—भगवत्संग कैसे मिलता है?

उत्तर—साधु या महापुरुषोंका संग करनेपर उनकी दयासे सहज ही भगवत्-संग प्राप्त होता है।

प्रश्न—साधुसंग किसे कहते हैं?

उत्तर—साधु या महापुरुषके पास बैठे रहनेसे ही साधुसंग नहीं होता। उनके पास या दूर रहनेका कोई अर्थ नहीं है। उनके प्रति भक्ति और विश्वास होना चाहिये। उनको मनन करना चाहिये। किसी-किसीको साधुके समीप बैठे रहनेपर भी असली साधुसंग नहीं होता और किसी-किसीको दूर रहनेपर भी वास्तविक साधुसंग हो जाता है। इसीलिये शास्त्रने कहा है—

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः।
हृदये यदि न स्थितः समीपस्थोऽपि दूरतः॥

परंतु जो साधुको मनन नहीं कर सकता, वह यदि केवल साधुके पास बैठा रहे तो उसको साधुसंगका पूर्ण फल प्राप्त न होनेपर भी उसका विशेष उपकार होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। साधुके पास बैठते-बैठते, सदा ज्ञान और भक्तिकी बातें सुनते-सुनते साधुसंगके माहात्म्यसे उसके देह और मनके अणु-परमाणु बदल जायँगे और वह बिलकुल नया जीवन प्राप्त कर लेगा। यही तो साधुसंगका माहात्म्य है।

प्रश्न—साधुसंग करनेसे क्या होता है?

उत्तर—यदि कोई क्षणभर भी वास्तविक साधुसंग कर लेता है, तो वह उसके लिये भवसागरसे तरनेके लिये नौका हो जाता है। मोक्षके चार दरवाजे हैं, उनमें एक साधुसंग है। सन्तजनके दर्शन, स्पर्श और संगसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य निर्मल हो जाता है। इसीलिये कहा जाता है—

क्षणमिह सज्जनसङ्गतिरेका
भवति भवार्णवतरणे नौका।

यह ठीक है। क्षणकालके भी साधुसंगका फल अमोघ है। सूर्यके सामने जाओगे तो गरमी लगेगी ही, प्रकाश मिलेगा ही। हाँ, शरीर ढककर गये तो फिर गये ही क्या? इसी प्रकार जो साधुके समीप जाते हैं, वास्तविक साधुसंग करते हैं, वदन ढककर नहीं रखते, उनके वदनपर साधुके ज्ञान और भक्तिकी आभा पड़ेगी ही, उनकी पापबुद्धि कम होगी ही; कम-से-कम क्षणभरके लिये तो वे देवत्वको प्राप्त हो ही जायँगे।

अतएव साधुसंग क्षणभरका होनेपर भी अमोघ फल देता है। पारसके स्पर्शसे लोहा सोना होता है, परंतु साधुरूप पारस जिससे छू जाता है, वह तो पारस ही हो जाता है।

प्रश्न—साधु कौन है?

उत्तर—जिसके लिये कुछ भी साधन करना बाकी नहीं रहा, जिसने सब साधनोंको सम्पन्न कर लिया है, वही साधु है। जानते हो, ऐसी अवस्था किसकी होती है? जिसका भगवान्‌में पूर्ण प्रेम या पूर्ण भक्ति होती है।

प्रश्न—पूर्ण भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—केवल भगवान्‌की सेवा ही तुमको अच्छी लगे, उनकी सेवा किये बिना रह न सको, इसलिये सदा सेवामें ही लगे रहो, उनके चिन्तनको छोड़कर एक निमेषके लिये भी तुम्हारे हृदयमें दूसरा कोई चिन्तन न आये और जब 'मैं सेवा करता हूँ' यह भाव घड़ीभरके लिये भी तुम्हारे हृदयमें न जागने पाये और अवशरूपसे केवल उनकी सेवा ही अच्छी लगती है, सेवा किये बिना रहा नहीं जाता, इसलिये जब शरीर-मन-वाणीसे अपनेको उनके चरणोंमें अर्पण कर दोगे, तब उनके चरणोंमें 'पूर्ण भक्ति' होगी।

जिसका भीतर और बाहर समान हो गया है, वह भक्त है। अर्थात् जो आँखें मूँदनेपर हृदयमें केवल श्रीसीतारामजीकी मूर्ति ही देखता है और आँखें खोलनेपर बाह्य जगत्‌में भी जो श्रीसीतारामजीको देखता है, इस प्रकार जो भीतर-बाहर केवल भगवान्‌के रूपको ही देखता है, वह भक्त है। वह बाह्य जगत्‌की प्रत्येक वस्तुमें भगवान्‌के अस्तित्वका अनुभवकर आनन्दमें विभोर होकर आँखें मूँदता है, और आँखें मूँदनेपर हृदयमें भी केवल भगवान्‌की ही मूर्तिको देखकर और भी आनन्दमग्न होता है। क्या भीतर और क्या बाहर, वह तो भगवान्‌के सिवा और कुछ भी नहीं जानता, कुछ भी नहीं देखता। वह भीतर-बाहर सदा ही आनन्दमयको देखकर आनन्दमग्न रहता है। इसीको भीतर-बाहर समान कहते हैं, इसीका नाम भक्ति है। जिसकी ऐसी स्थिति हो गयी है, वही भक्त है।

जिसकी ऐसी पूर्ण भक्ति होती है, वह अपनेको भगवान्‌के ऊपर ही निर्भर करता है। वह विपत्ति पड़नेपर भगवान्‌की ओर देखेगा, रोग होनेपर भगवान्‌की ओर देखेगा, औषध और वैद्यकी ओर नहीं। सूर्य जैसे कभी शीतल नहीं हो सकता, इसी प्रकार जो ठीक-ठीक भगवान्‌पर अपनेको निर्भर करता है, उसको कभी दुःख नहीं हो सकता।

प्रश्न—हाथ-पैर रहते पुरुषार्थ न करके, काम न करके, केवल भगवान्‌के ऊपर निर्भर रहना क्या कापुरुषताका लक्षण नहीं।

उत्तर—नहीं! यह कापुरुषता नहीं है, यही यथार्थ पुरुषकार है। ऐसा पुरुषकार करनेके लिये बड़ी शक्ति चाहिये। साधारण मनुष्यमें ऐसी शक्ति नहीं होती, इसलिये वह इस पुरुषकारको नहीं कर सकता। पुरुषकार किसे कहते हैं? पुरुषत्वके अवलम्बनको, पुरुषके आश्रयको। पुरुष कौन है? एक भगवान् ही पुरुष हैं, या उनका संग पाकर जो भगवत्स्वरूप हो गये हैं, वे महापुरुष साधुगण पुरुष हैं। और सब तो प्रकृति है। अतएव भगवान्‌के प्रति या किसी परम भक्त महापुरुषके प्रति पूर्णरूपसे निर्भर करना ही श्रेष्ठ पुरुषकार है।

प्रश्न—बहुत-से लोग भगवान्‌पर निर्भर करते हैं, कितने ही महापुरुषोंपर निर्भर करते हैं, तब भी वे दुःख क्यों भोगते हैं?

उत्तर—यदि निर्भर करके भी दुःख भोगते हैं तो यही समझो कि निर्भरता ठीक नहीं हुई है। उसमें कुछ कसर है। जो सर्वशक्तिमान् है, उनका ठीक-ठीक आश्रय ले लेनेपर क्या कभी दुःख रह सकता है?

प्रश्न—क्या करनेसे भगवान्‌में मन जा सकता है?

उत्तर—भगवान्‌को प्रेम करनेसे। जो जिससे प्रेम करता है, उसकी ओर मन जाता है। सती स्त्री पतिको प्यार करती है, इसीसे उसका मन सदा पतिकी ओर ही जाता है। वह रसोईघरमें बैठी-बैठी भोजन बनाती है, और वहींसे चोरकी तरह चुपचाप झाँक-झाँककर पतिको देखती है। इसी तरह जो भगवान्‌से प्यार करते हैं, वे कामकाज करते हुए—लिखना-पढ़ना करते हुए ही, जैसे सती स्त्री अपने मनको पतिकी ओर रखती है, वैसे ही भगवान्‌की ही ओर मन लगाये रखते हैं और मौका मिलते ही भगवत्कथा सुनते हैं, भगवत्-ग्रन्थ पढ़ते

हैं, स्तव-पाठ करते हैं और नाम-जप करते हैं।

प्रश्न— भगवान्‌में भक्ति कैसे हो?

उत्तर— भगवान्‌के विशेष अनुग्रहसे।

प्रश्न— भगवान्‌का अनुग्रह किसके प्रति होता है?

उत्तर— बिना कारण कोई भी कभी भगवान्‌का विशेष अनुग्रह प्राप्त नहीं कर सकता। संसारमें भी देखा जाता है कि जो सब प्रकारसे हमारे अनुगत होते हैं, जो सदा-सर्वदा हमारी आज्ञाका पालन करते हैं, उनके प्रति हम प्रसन्न होते हैं और उन्हींपर अनुग्रह करते हैं। इसी प्रकार जो लोग सदा भगवान्‌के अनुगत हैं, जो सदा भगवान्‌के वचनोंका पालन करते हैं, उनके प्रति भगवान् विशेष अनुग्रह करते हैं। अब यह प्रश्न है कि भगवान्‌के वचन कौन-से हैं? वेद ही भगवान्‌के वचन हैं, अतएव जो सदा-सर्वदा वेदकी आज्ञाका पालन करते हैं, कदापि वेदविरुद्ध कार्य नहीं करते, भगवान् उनके प्रति प्रसन्न होते हैं और उन्हींपर विशेष अनुग्रह करते हैं। 'अनुग्रह' शब्दपर विचार करो, तब तुम और भी अच्छी तरह समझ सकोगे। 'अनु' का अर्थ है पश्चात् और 'ग्रह' का अर्थ है ग्रहण। अतएव अनुग्रहका अर्थ हुआ पश्चात्‌से ग्रहण करना। अर्थात् तुम यदि भगवान्‌को पहले ग्रहण करोगे तो भगवान् तुमको ग्रहण करेंगे। तुम्हें भक्ति देंगे और दर्शन भी देंगे। इसीका नाम अनुग्रह है।

प्रश्न— भगवान् जब दयाके सागर हैं, तब यदि हम उन्हें ग्रहण नहीं करें, तपस्या नहीं करें, उनको नहीं पुकारें, तो भी उनको स्वयं आकर हमें दर्शन क्यों नहीं देना चाहिये?

उत्तर— भगवान्‌का आना-जाना क्या है? भगवान् तो सदा तुम्हारे ही हैं। तुमने अनेकों मलिनताओंके आवरणोंसे अपनेको ढक रखा है, इसीलिये अपनेको पहचान नहीं सकते। इस मलिनताके पर्देको फाड़ डालना ही गुरुका कार्य होता है। यही गुरुका गुरुत्व है। इस पर्देको फाड़नेके लिये ही तपस्वी तप करते हैं, जापक जप करते हैं और योगीलोग योगाभ्यास किया करते हैं। जिस दिन तुम्हारा यह मलिनताका पर्दा फट जायगा, उसी दिन तुम भी शंकराचार्यके समान आनन्दमें निमग्न होकर पुकार उठोगे **'शिवोऽहम्' 'शिवोऽहम्'**। अतएव यदि तुम भगवान्‌के दर्शन करना चाहते हो, तो धीरे-धीरे इस मलिनताके पर्देको फाड़ो। जिस दिन यह पूर्णरूपसे फट जायगा, उसी दिन तुम भीतर-बाहर सर्वत्र केवल एक भगवान्‌को ही देखोगे। भगवान्‌में अनन्त शक्ति और अनन्त दया है। उनसे मनुष्य जो कुछ माँगता है, वही उसको मिल जाता है। तुमने उनसे विषयसुख चाहा, इसलिये तुम्हें विषयसुख मिल गया। जब तुमने उनका दर्शन चाहा ही नहीं, तब वह तुम्हें क्यों दर्शन देने लगे?

कभी-कभी भगवान् अपने भक्तपर कृपा या अनुग्रह करनेके लिये शरीर धारण करके भक्तको दर्शन दिया करते हैं। परंतु जबतक तुमपर मलिनताका आवरण रहेगा, तबतक शरीर धारण करके तुम्हारे समीप आनेपर भी तुम भगवान्‌को नहीं देख सकोगे। तुलसीदासजीको भगवान्‌ने 'श्रीसीताराम' रूपसे तीन बार दर्शन दिये; परंतु वे उनको नहीं पहचान सके, मनुष्य समझकर उन्होंने भगवान्‌की उपेक्षा की। पीछे जब महावीरजीकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने स्वयं तुलसीदासजीके आवरणको हटा दिया और उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की, तब उन्होंने भगवान्‌को पहचाना। तभी वह 'सीताराम, सीताराम' पुकारकर सीतारामजीके चरणोंमें लोट सके। भगवान् दयाके सागर हैं। वह तुम्हारे अन्दर ही मौजूद हैं, वह तुमसे दूर नहीं हैं, परंतु तुम्हींने जब आँखें मींच रखी हैं, तब भगवान्‌का क्या दोष है? आँखें खोलो, मलिनताके पर्देको हटाओ, फिर भगवान्‌को देख सकोगे।

भगवान् तो सदा ही हमलोगोंको दर्शन देना चाहते हैं, इतनेपर भी हमलोगोंको उनके दर्शन क्यों नहीं होते, इसका कारण जानते हो? चुम्बक तो सदा ही लोहेको आकर्षण करता है; परंतु लोहा यदि जंगसे ढक गया हो तो वह जाकर चुम्बकसे नहीं मिल सकता, इसमें चुम्बकका क्या दोष है? जंग हटा दो; बस, उसी समय लोहे-चुम्बकका मिलन हो जायगा। इसी प्रकार करुणामय भगवान् तो हमारे पास रहकर नित्य ही हमें पुकारा करते हैं, परंतु हम उनसे इसी कारण नहीं मिल सकते कि हम चारों ओरसे (जंग)-से ढके हुए हैं। इसमें चुम्बकरूपी भगवान्‌का क्या दोष है? इस जंगको अर्थात् मलको हटा दो, फिर उसी समय लौह-चुम्बककी भाँति भगवान्‌के साथ तुम्हारा मिलन हो जायगा। **[आगामी अंकमें समाप्य]**

खुशबू बिखेरनेकी उम्र—वृद्धावस्था

(ब्रिगेडियर श्रीकरनसिंहजी चौहान)

जिस प्रकार वृक्षपर फल पूर्णरूपसे पकनेके पश्चात् मिठास तथा सौन्दर्य प्रदान करता है तथा प्रकृतिमें चारों ओर मन-मोहक सुगन्ध बिखेरता है, उसी प्रकार जीवनकी परिपक्व स्थिति अर्थात् वृद्धावस्था समाजको मिठास एवं प्रकाश प्रदान करनेमें समर्थ होती है। यह जीवनका एक ऐसा चरण है, जो प्रत्येक दृष्टिसे सर्वोत्कृष्ट है, किंतु दुर्भाग्यसे वृद्धावस्थासे जन-मानस भयभीत रहता है। क्या यह वास्तवमें भयावह स्थिति है? वृद्धावस्था तो मनुष्यके लिये उन अनुभवरूपी वाद्ययन्त्रोंके समान है, जो हर समय मानस-पटलपर अपनी मोहक धुन बजाते रहते हैं।

पाश्चात्त्य लेखिका सेनेकाने वृद्धोंके लिये एक उत्कृष्ट सलाह दी है—वृद्धावस्थाको गले लगाओ और उसे प्यार करो। इस प्रकारके कदमसे आनन्ददायी अनुभव होता है। वृद्धावस्थाकी ओर अग्रसर होते जीवनके वर्ष मानव-जीवनको अलौकिक सन्तुष्टि प्रदान करते हैं और मैं यह मानता हूँ कि इन वर्षोंके चरम सीमापर पहुँचनेपर भी इनमें उतना ही आनन्द विद्यमान रहता है।

भारतवर्षके किसी प्राचीन विचारकने कहा था—'मनुष्य शीघ्र ही वृद्धावस्था एवं मृत्यु इसलिये प्राप्त करता है; क्योंकि वह दूसरोंको वृद्ध होते एवं मृत्युको प्राप्त होते देखता है।' उक्त कथन वर्तमान वैज्ञानिक विश्लेषणोंके आधारपर सत्य सिद्ध हो चुका है। हारवर्ड विश्वविद्यालयके विलियम जेम्सने कहा है—इस सदीका सबसे बड़ा शोध यह हुआ है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्तिसे अपने जीवनको स्वयंद्वारा बनायी गयी धारणाओंके आधारपर वास्तविक स्वरूपमें परिवर्तित कर सकता है।

आप वृद्धावस्थामें कब प्रवेश करते हैं? इस सन्दर्भमें अधोनिर्दिष्ट संकेतोंपर मंथन करना आवश्यक है—

१-जब हम स्वयं यह मानने लग जाते हैं कि हम वृद्ध हो रहे हैं अथवा जब हम अपने सपनोंको बहुत पीछे छोड़ देते हैं।

२-जब हमारी आशाएँ कम होने लगती हैं।

अमरीकामें न्यूजवीक पत्रिकामें ३० जून १९५८ को एक समाचार प्रकाशित किया गया, जिसमें अजरबैजानके कृषक मोहम फिवाजोरने अपनी १५०वीं वर्षगाँठ २३ लड़कों एवं लड़कियों और कुल १५२ सदस्योंके परिवारके साथ मनायी। ऐसी परिपक्वता एवं इतना बड़ा कुटुम्ब तो भाग्यशाली व्यक्तियोंको ही प्राप्त होता है। मेयो क्लिनिक मन्थली हैल्थ न्यूज लेटरने हाल-ही-में यह प्रकाशित किया है कि आनेवाले समयके विषयमें आप जितना सोचते हैं, उससे अधिक वृद्ध होनेके अतिरिक्त और कुछ किया ही नहीं।

कोलेरिजने कहा है—'यह दुनिया बच्चोंके बिना कितनी सूनी और वृद्धोंके बिना कितनी अमानवीय होगी।' रोबर्ट बटलरने अपनी पुस्तक 'Why survive' में लिखा है—'वृद्धावस्थाका दु:ख इसलिये नहीं है कि हम वृद्ध होते हैं और मृत्युको प्राप्त होते हैं, बल्कि इसलिये है कि हम इस प्रक्रियामें अत्यन्त दुखी, तिरस्कृत और एकाकी हो जाते हैं।'

वैज्ञानिक विश्लेषणोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक मिनटमें मनुष्यके ३ बिलियन सेल नष्ट होते हैं तथा उनके स्थानपर नये सेल जन्म ले लेते हैं, फिर हम वृद्ध कैसे हुए? हम तो सदैव नये बन रहे हैं। इन वैज्ञानिक तथ्योंपर अवलम्बित विचारधारा हमारे जीवनको आनन्दकी ओर ले जा सकती है।

हमारे यहाँ वेदोंसे लेकर लोकजीवनतकमें आशीर्वादके रूपमें हमेशा 'सौ साल जीओ'—ऐसा कहा जाता रहा है। दीर्घायुष्य पानेके लिये विश्व स्वास्थ्य संगठनद्वारा हाल-ही-में जारी एक रिपोर्ट—'ऐजिंग एक्सप्लोडिंग द मिथ' में उन्होंने कुछ ऐसे उपाय सुझाये हैं, जिससे भावी पीढ़ीमें शीघ्र वृद्धावस्था न आये तथा जब वृद्धावस्था आये तो एक आनन्दमयी अनुभूति हो। पुरुष एवं स्त्री—दोनोंके लिये समान रूपसे उपादेय वे उपाय कुछ इस प्रकार हैं—

१-नवयुवतियाँ संतुलित आहार ग्रहण करें। विशेष रूपसे गर्भावस्थाके समय उन्हें आहारमें सन्तुलन रखना चाहिये, २-शिशुओंको माताएँ दूध कम-से-कम चार मासतक अवश्य पिलायें, ३-धूम्रपान न करें, ४-प्रतिदिन व्यायाम करें, ५-भोजनमें फाइबरकी मात्रा अधिक तथा फैट एवं नमककी मात्रा कम रखें, ६-वजन नियंत्रणमें रखें, ७-परिवार-समुदाय, क्लब और धार्मिक संस्थाओं आदिसे जुड़े रहें और ८-भविष्यकी आर्थिक संरक्षाकी दृष्टिसे बचत सुनिश्चित करें।

अमेरिकाके कृषि, स्वास्थ्य एवं मानवीय विज्ञानने वृद्धोंके लिये एक भोजन-पिरामिड तैयार किया है, जिसमें प्रतिदिन ८ गिलास पानी, ५ ब्रेड, ३ सब्जियाँ, २ बार फ्रूट, ३ बार दूध, दही, पनीर, २ बार बीन्स, नट्स आदि पुष्ट खाद्यकी सरविंगके बारेमें सलाह दी है। साथ ही तेल, घी, मिठाइयाँ आदि बहुत कम खाने व ७० वर्षके बाद कैल्शियम, विटामिन डी एवं विटामिन बी-१२के सप्लीमेंट लेनेके लिये कहा है।

प्लेटोने कहा था—'वृद्धावस्थासे डरो, क्योंकि वह कभी अकेले नहीं आती' यह एक सत्य है, जिसे नकारा नहीं जा सकता, परंतु वृद्धावस्थाको आनन्दमय एवं उत्साहवर्धक बनानेके बारेमें विभिन्न दार्शनिकोंके विचारों एवं वैज्ञानिक शोधोंपर आधारित निम्नलिखित सात व्यावहारिक चरण विचारणीय हैं, जिससे वृद्धावस्थाका स्वरूप बदला जा सकता है—

(१) वास्तविकताको स्वीकारें—६० वर्षकी आयुमें आप १६ वर्षके नहीं हो सकते। सेवानिवृत्ति, वृद्धावस्था, रोग एवं मृत्यु अवश्यम्भावी हैं। जीवनके पूर्व-निर्धारित उद्देश्योंके तहत यदि हमने कार्य पूर्ण कर लिये हैं और फिर भी हम जीवित हैं तो इसका आशय यह है कि हमें अभी और भी बहुत कुछ करना शेष है।

रोबर्ट फ्रोस्टने कहा है—'माइल्स टू गो बिफोर आई स्लीप'। बचपन एवं युवावस्थामें जिस प्रकारके वातावरणमें रहे हैं तथा वृद्धावस्थामें जिस वातावरणमें जीना है, इन दोनोंमें काफी अन्तर होना स्वाभाविक है। वृद्धावस्थामें अकेले रहना हमारी आवश्यकता या मजबूरी है। एकान्तवासका प्रबन्धन न करनेसे हृदयकी शक्ति नष्ट होती है, एवं वह अप्रबन्धन स्वास्थ्यको प्रभावित करता है, इसलिये समाजकी सेवा करें, रुचियोंको बढ़ायें और स्वयंको अधिकतम व्यस्त रखें।

एक बार एक डॉ० मित्रने अपने वृद्ध साथीको यह सलाह दी कि अगर आप ७० वर्षकी आयुके पश्चात् बिना किसी पीड़ाके उठते हैं तो इसका तात्पर्य यह है कि आप जिन्दा नहीं हैं। वाइस ऑफ अमरीकाने एक वैज्ञानिक शोधके आधारपर इन छोटी-छोटी पीड़ाओंके लिये एक सरल उपाय सुझाया है—उबासी लो—राहत मिलेगी। लेकिन स्थायी राहत तो वास्तविकताको स्वीकार करनेसे ही प्राप्त होती है।

(२) अच्छे खिलाड़ी बनें—प्रकृति अति बलवान् है और वृद्धावस्था प्रकृतिकी ही देन है। जीत प्रकृतिकी ही होगी। जर्मन लेखक विस्चर दोरनने कहा है—एक अच्छा खिलाड़ी अपनी हार एवं जीतको समान रूपसे अपनाता है, अतः एक अच्छे खिलाड़ीकी प्रवृत्ति अपनायें।

एक कमजोर खिलाड़ी हारको स्वीकार नहीं करता और अच्छा खिलाड़ी हारकर भी जीत जाता है।

(३) लचीलापन अपनायें—लचीलेपनमें विनम्रता निहित है। जीवनमें जो वस्तु लचीली होती है, वह धाराके प्रवाहके साथ बह सकती है तथा हमेशा विकसित होती जाती है। यह तथ्य प्रकृतिकी सभी वस्तुओंमें दृष्टिगोचर होता है। लहलहाती घास तूफान थमनेके तुरंत बाद अपनी पुरानी स्थितिमें वापस आ जाती है, जबकि बड़े-बड़े वृक्ष धराशायी हो जाते हैं।

चीनमें एक कहावत है कि वृद्धावस्थामें शीघ्रता तभी करो जबकि आपको ऐसा प्रतीत हो कि आपका हाथ किसी शेरके मुँहमें है, अन्यथा सरल प्रवाहसे अपना जीवन व्यतीत करो।

(४) यात्राकी तैयारी—वृद्धावस्था यात्राका सर्वोत्तम और अन्तिम अध्याय है, अतएव इसके लिये पहलेसे ही तैयारी किया जाना नितान्त जरूरी है। विचारकोंका यह मानना है कि १७ वर्षकी आयुमें ७०

वर्षकी आयुके लिये तैयारी करनी चाहिये। वृद्धावस्थामें फल खानेके लिये युवावस्थामें वृक्ष लगाना आवश्यक है। जीवनके अनुभवों एवं कठोर परिश्रमको लक्षित करनेवाले बूढ़े चेहरेपर सफेद बालोंकी गरिमा मन्दिरमें प्रकाशमान शुभ्र ज्योतिके प्रतिरूपका स्मरण कराती है और भावी पीढ़ीका मार्ग प्रशस्त करती हुई हमेशा यह स्वीकार करती है—बेस्ट इज यट टू बी।

(५) दार्शनिक विचारधारा अपनायें— वृद्धावस्थामें ऐसी कई घटनाएँ घटित होती हैं, जो व्यक्तिकी कंडीशनिंग, प्रोग्रामिंग या इच्छाओंके अनुरूप नहीं होती हैं। ऐसी अवस्थामें समायोजन करनेके लिये दार्शनिक विचारधारा बहुत सहायक सिद्ध होती है। एक बार सुकरात और उनकी पत्नीमें किसी बातको लेकर कहा-सुनी हो गयी, इसके कुछ समय बाद वे जब अपने शिष्योंके साथ घरसे निकल रहे थे तो उनकी पत्नीने उनके ऊपर कीचड़की बाल्टी डाल दी। तब सुकरातने अपने शिष्योंकी तरफ देखते हुए मुसकराकर कहा—'पहले तो ये बादल सिर्फ गरजा करते थे, अब बरसने भी लगे हैं।' दार्शनिक चिन्तनके क्षेत्रमें भारत विश्वका सबसे समृद्ध देश है। यहाँकी आश्रम-व्यवस्थाके अनुशासक शास्त्र आयुके चतुर्थ चरणको एकमात्र दार्शनिक दृष्टिकोणके ही शरणापन्न होनेकी बात कहते हैं और यह सर्वथा उचित भी है।

(६) कम सामान ज्यादा आराम— वृद्धावस्थामें ज्यादा सामानके साथ कठिनाइयोंकी संख्या भी बढ़ जाती है—१-बहुत मेहनत करके पाना, २-सुरक्षित रखनेकी चिन्ता, ३-उसको रखनेसे मोह उत्पन्न होना तथा निर्भरतामें वृद्धि होना, ४-सामानके खराब या गुम होनेका दु:ख, ५-जो सामान हम रख रहे हैं, उससे किसीको वंचित करना। वानप्रस्थ या संन्यास-आश्रम हो अथवा किसी शहरके फ्लैटमें जीवन व्यतीत कर रहे हों, कम-से-कम सामानका होना इस अवस्थाकी अनिवार्य आवश्यकता है।

मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थोंमें वर्णित एक तथ्यपूर्ण कथनको महात्मा गाँधी अकसर दोहराया करते थे कि इस संसारमें हर व्यक्तिके लिये जितना चाहिये, उतना उपलब्ध है, परंतु एक लोभी व्यक्तिके लिये वह सारा भी अपर्याप्त है।

(७) देनेकी प्रवृत्ति— वृद्धावस्था सदैव कुछ-न-कुछ देनेके लिये ही होती है। प्रकृतिका नियम है कि हम जितना देते हैं, उससे अधिक हमें प्राप्त हो जाता है। जब कभी देनेकी बात आती है, तो हमारे मनमें सबसे पहले धन-दौलत देनेकी बात ही आती है। परंतु यह तो एक सबसे निचले क्रमकी बात है। हम प्रार्थना, आशीर्वाद, मुसकान, फल-फूल, ज्ञान आदि कई चीजें भावी पीढ़ीको दे सकते हैं। इस प्रकार हम अपना स्वयंका उदाहरण प्रस्तुतकर समाजको नई दिशा प्रदान कर सकते हैं। आप अपने कीर्तिमानोंको एक लम्बे समयतक कायम नहीं रख सकते हैं। आपको जीवनपर्यन्त नये-नये अनुभव एवं उदाहरण प्रस्तुत करने होंगे तथा सर्वोत्कृष्ट कार्य करते रहना होगा। महात्मा गाँधीने साठ वर्षकी आयुमें २०० किलोमीटरकी पैदल यात्रा की थी।

ओल्ड टैस्टामेन्टमें लिखा है 'हृदयकी प्रसन्नता ही मानवीय जीवन है तथा आनन्द ही उसे दीर्घायु बनाता है और आनन्द तो सदैव देनेमें ही है।'

वृद्धावस्थामें मृत्युका भय होना स्वाभाविक ही है। यह भय सिर्फ ज्ञानके प्रकाशसे ही दूर किया जा सकता है। मृत्यु एक पूर्ण-विराम न होकर एक अर्धविराम है। यह एक क्षितिज है और क्षितिज तो अपनी ही दृष्टिकी सीमा है। क्या आपने ऐसा पुष्प देखा है, जो कभी न मुरझाता हो? वह पुष्प अपनी वृद्धावस्थामें अर्थात् मुरझाते समय वायुके झोंकोंके साथ मनमोहक नृत्य करता रहता है, तितलियोंके साथ अठखेलियाँ करता रहता है और इस सम्पूर्ण अवधिमें वह अपनी सुगन्ध वातावरणमें चारों ओर बिखेरता रहता है। क्या यह प्रकृतिका हमारे लिये एक प्रेरणादायक सन्देश नहीं है?

लोग यदि जीवनको इस शैलीसे जीने लगें, तो उन्हें यह न कहना पड़े—'काश! मुझे पता होता कि मैं इतना अधिक समयतक जीऊँगा, तो अपने स्वास्थ्य एवं विचारका भी ध्यान रखता।'

तीर्थ-दर्शन—

हिंगुला (हिंगलाज) माता

(श्रीगयाप्रसादसिंहजी शास्त्री, एम०ए०, एम०लिब०एस-सी०)

सन् १९५६में लेखक गम्भीररूपसे बीमार पड़ा और मृतप्राय हो गया। उसकी माँको तो यह पीड़ा उससे भी अधिक असह्य हो गयी; क्योंकि इसके पूर्व उन्हें अपने बड़े पुत्र (लेखकके ज्येष्ठ भ्राता)-का वियोग हो गया था। अत: वे लेखकके गाँवमें ही स्थित श्रीकालीजी एवं श्रीशीतलाजीके मन्दिरोंकी विभूति लेकर उसके शरीरपर पोततीं तथा उसके कल्याणार्थ उनकी स्तुति करती थीं। एक दिन यकायक रात्रिके नौ बजे किसी दिव्य शक्तिने लेखककी दैहिक माताके माध्यमसे कुछ बातें कहीं और उसे सांनिपातिक ज्वरसे तत्क्षण मुक्ति मिलकर नवजीवन प्राप्त हुआ। यह एक ऐसी घड़ी थी, जिस समय लेखकके परिवारके सभी प्राणी एवं गाँवके अन्य बन्धु-बान्धव उसके जीवनसे निराश-से हो गये थे।

अब माँकी कृपाद्वारा नवजीवन-प्राप्त लेखककी जिज्ञासा जगज्जननी हिंगलाजके सम्बन्धमें बढ़ने लगी; यत: इस सम्बन्धमें देवीदासरचित 'दुर्गाचालीसा' एवं 'विन्ध्येश्वरीचालीसा'की निम्नांकित पंक्तियोंका उसे स्मरण हो आया—

हिंगलाज में तुम्हीं भवानी। महिमा अमित न जात बखानी॥

× × ×

तुम ही हिंगलाज महरानी। तुम ही सीतला अरु बिज्ञानी॥

पूर्ण स्वस्थ होकर लेखक अब माँकी कृपासे श्रद्धापूर्वक ग्रन्थावलोकनमें प्रवृत्त हुआ। उनकी कृपाके परिणामस्वरूप उसे निम्नलिखित जानकारियाँ प्राप्त हुईं।

१-श्रीराणाप्रसादजी शर्माद्वारा लिखित पौराणिक कोशके आधारपर हिंगुला (हिंगलाज) माँके मन्दिरकी भौगोलिक स्थिति इस प्रकार है—हिंगलाज—(क) बिलोचिस्तानकी पहाड़ियोंकी गुफामें देवी स्थित हैं। समुद्रके किनारे कराँचीसे ४५ कोस जानेपर हम वहाँ पहुँचते हैं। (ख) हिंगुला—सिंधु और बिलोचिस्तानके बीचका वह प्रदेश, जहाँ हिंगलाज-देवीका मन्दिर है।

२-शब्दकल्पद्रुमकोश, भाग ५, पृष्ठ ५३६ पर 'तन्त्रचूडामणि'के आधारपर कहा गया है कि सतीके ब्रह्मरन्ध्रका हिंगुलाजमें ही पात हुआ था, अत: वहाँ शक्तिपीठ है। तन्त्रका मूल वचन इस प्रकार है—

ब्रह्मरन्ध्रं हिङ्गुलायां भैरवो भीमलोचनः।
कोट्टरी सा महामाया त्रिगुणा या दिगम्बरी॥

३-गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'कल्याण' वर्ष ९ के शक्ति-अंक, (सं०१९२१)-में सतीके ५१ पीठोंका वर्णन एक तालिकाके रूपमें प्राप्त है। इसमें प्रथमपीठ हिंगुलाज ही है। यहाँ माँका ब्रह्मरन्ध्र गिरा था। यहाँ इनकी शक्ति कोट्टरी (या कोट्टवी) एवं भैरव-भीमलोचन हैं। यह स्थान बिलोचिस्तानमें हिंगोस नदीके तटपर है। प्रायः यही वर्णन तीर्थांकके भी अन्तमें है।

४-गीताप्रेस (गोरखपुर)के 'कल्याण'के ३१वें वर्षके प्रथम अंक (तीर्थांक)-में इसके अतिरिक्त दो और विवरण प्राप्त होते हैं। इनके अनुसार हिंगुलाज पहुँचनेके लिये कराँचीसे पारसकी खाड़ीकी ओर नावसे मकरानतक जाना पड़ता है। उसके बाद पदयात्रासे ७वें मुकामपर चन्द्रकूप तथा १३वें मुकामपर हिंगुलाज पहुँचते हैं। यहाँपर गुफामें ज्योतिके रूपमें जगज्जननी भगवती हिंगुलाके दर्शन होते हैं। गुफामें हाथ-पैरके बल जाना पड़ता है। साथमें काली माँका भी दर्शन है। हिंगुलाका डुमरेका दाना प्रसिद्ध है। साधु इसकी माला पहनते हैं। हिंगराजमें पृथ्वीसे निकलती ज्योति दृष्ट होती है। (पृष्ठ ७५ तथा ५१६)

एक अन्य प्रमाण वामनपुराणसे भी प्राप्त हुआ है। इसके अनुसार हिंगलाज माताकी उत्पत्ति शंकरजीके मस्तिष्कसे हुई है। यह हिंगलाज माताके देवीत्वको और पुष्ट करता है। इसी पुराणके ४४वें अध्यायमें 'चर्चिका'के प्रसंगमें भी हिंगुलाका वर्णन आया है। इसके अनुसार जिस समय भगवान् शिव अंधक दैत्यको मार रहे थे, उस समय त्रिशूल-भेदनसे उसके शरीरसे अत्यधिक रुधिरका पात हुआ। उससे अष्टमूर्ति महादेव आकण्ठ मग्न हो गये। परिश्रमके कारण भगवान् शंकरके ललाटफलकपर स्वेद उत्पन्न हुआ। इससे एक रुधिराप्लुता कन्या प्रकट हुई एवं मुखसे पृथ्वीपर गिरे स्वेदबिन्दुओंसे अंगारपुंजकी शोभावाला एक बालक कुज (मंगल ग्रह) उत्पन्न हुआ। अत्यन्त प्यासा वह बालक अंधकका रुधिर पान करने लगा एवं वह अद्भुत कन्या भी उठकर रुधिर चाटने लगी। तदनन्तर भैरवरूपधारी वरद शंकरने बाल सूर्यके सदृश प्रभावाली उस कन्यासे लोक-कल्याणकारी ये महान् वचन कहे—

'शुभकारिणि! देवता, ऋषि, पितर, उरग, यक्ष, विद्याधर एवं मानव तुम्हारी पूजा करेंगे। देवि! लोग बलि एवं पुष्पांजलिद्वारा तुम्हारी स्तुति करेंगे। तुम रुधिरसे चर्चित हो, अतः तुम्हारा नाम 'चर्चिका' होगा। भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर व्याघ्रचर्मका वस्त्र धारण करनेवाली भूतानुजाता सुन्दरी 'चर्चिका' पृथ्वीपर चतुर्दिक् भ्रमण करती हुई उत्तम 'हिंगुलाद्रि' (हिंगुलपर्वत)-पर चली गयी—

कन्या चोत्कृत्य संजातमसृग् विलिलिहेऽद्भुता॥
ततस्तामाह बालार्कप्रभां भैरवमूर्तिमान्।
शंकरो वरदो लोके श्रेयोऽर्थाय वचो महत्॥
त्वां पूजयिष्यन्ति सुरा ऋषयः पितरोरगाः।
यक्षविद्याधराश्चैव मानवाश्च शुभङ्करि॥
त्वां स्तोष्यन्ति सदा देवि बलिपुष्पोत्करैः करैः।
चर्चिकेति शुभं नाम यस्माद् रुधिरचर्चिता॥
इत्येवमुक्ता वरदेन चर्चिका
भूतानुजाता हरिचर्मवासिनी।
महीं समंताद् विचचार सुन्दरी
स्थानं गता हैङ्गुलताद्रिमुत्तमम्॥

(वामनपुराण, अध्याय ७०)

ये देवी परम्परासे दधिपर्ण ब्राह्मणोंकी आराध्या रही हैं। दुर्गासप्तशतीके पूर्वाङ्गभूत (वाराहपुराणोक्त) 'देवी-कवच'में भी 'चर्चिका' शब्द प्रयुक्त हुआ है—

'उत्तरोष्ठे च चर्चिका' (श्लोक-२४, गी०प्रे०सं०, नीलकण्ठी २२)

५-गौरी-सहस्रनाम एवं श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्र (गीताप्रेस, गोरखपुर)-में भी 'चर्चिका' शब्द प्रयुक्त हुआ है, उनमें निम्नांकित श्लोकमें ये नाम आये हैं।

सत्क्रिया गिरिजा नित्यशुद्धा पुष्पनिरन्तरा।
दुर्गा कात्यायनी चण्डी चर्चिका शान्तविग्रहा॥

६-माँकी आराधना अनादिकालसे भक्तोंद्वारा की जा रही है। इसकी प्राचीनताका प्रमाण 'बृहन्नीलतन्त्र'

में इस प्रकार प्राप्त होता है—

ज्वालामुखी हिङ्गुला च महातीर्थं गणेश्वरम्।
जानीहि सर्वसिद्धानां हेतुस्थानानि सुन्दरि॥

पुरातत्त्वविद् एवं हिंगुलाकी यात्रा करनेवाले पं० श्रीदेवदत्तजी शास्त्रीने अपने निबन्ध 'जय हिंगुलाज'में बड़े ही रोचक ढंगसे लिखा है—'सम्भावना है कि हजारों वर्षपूर्व यहाँ ज्वालामुखीपर्वत रहा होगा और भयंकर विस्फोटसे इन सबोंका निर्माण हुआ होगा। आश्चर्यजनक शिल्प था, बुद्धिसे परे वह निर्माण था, कल्पना यहाँ पानी भरती थी।' (नवनीत, जुलाई १९७८)

७–'शाक्तप्रमोद'के 'बगलामुखीसहस्रनाम'में इनका विवरण इस प्रकार प्राप्त होता है—

सर्वेश्वरी सिद्धविद्या परा परमदेवता।
हिङ्गुला हिङ्गुलाङ्गी च हिङ्गुलाधारवासिनी॥
हिङ्गुलोत्तमवर्णाभा हिङ्गुलाभरणा च सा।
जाग्रती च जगन्माता जगदीश्वरवल्लभा॥

८–क्रुक्सने 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स'में 'हिंगुलाज' शीर्षकसे एक लेख लिखा है, जो उसके छठे भाग पृ०७१५ पर प्रकाशित है। (इसके सम्पादक जैम्स हेस्टिंग्ज हैं और यह 'टी० एण्ड टी० क्लार्क' द्वारा एडिनबरासे १९१४ में १० भागोंमें प्रकाशित है।) उसके अनुसार हिङ्गलाजमाताकी उपासना विविध जातियोंके लोग करते आ रहे हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—हिन्दूलोग माँ पार्वती एवं कालीके रूपमें, मुसलमान—बीबी नानीके नामसे इनकी उपासना करते हैं। सीरिया, परसिया, अरमानिया तथा एशियाके विविध भागोंके लोग 'अनेति', 'अनैटिस' अथवा 'टानाइस'—के नामसे तथा कच्छके कपाड़ी इन्हें 'आशापूर्णा' देवी कहकर इनकी उपासना करते हैं। लाल्येकी 'देवीभागवत–ए स्टडीज'के अन्तमें भी इसका सुन्दर संग्रह है। कुछ अंग्रेज तीर्थयात्री वहाँके कुछ वृक्षोंकी शाखाको घाव तथा गँठियाकी औषधि मानते हैं तथा समरकंदके मुसलमान देवीजीकी स्तुतिको ही रीढ़की हड्डीकी बीमारीकी ओषधि मानते हैं। कुछ स्त्रियाँ बायें पैरसे परिक्रमाकर आँख–रोग–निवारण एवं सन्तान–प्राप्ति–हेतु प्रार्थना करती हैं।

९–यहाँ देवी सात बहनोंके रूपमें पूजित हैं। ऋग्वेदमें भी सात बहनोंका उल्लेख आया है, परंतु उनके नाम वर्णित नहीं हैं, पर निम्नलिखित मन्त्रसे स्पष्टतः 'सप्तस्वसार'का प्रयोग हुआ है तात्पर्य इन सात बहनोंसे ही प्रतीत होता है—

सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं
नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम्।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं
सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे॥

(ऋक्० ९।८६।३६)

इसका समर्थन करनेवाला मत्स्यपुराण (१७९।८९)-में भी एक श्लोक प्राप्त होता है—

सप्त ता मातरो देव्यः सार्द्धनारीनरः शिवः।
निवेश्य रौद्रं तत्स्थानं तत्रैवान्तरधीयत॥

१०–श्रीदेवदत्तजी शास्त्रीने अपने हिङ्गलाज–यात्रा–वर्णनमें, जो 'जय हिंगुलाज' शीर्षकसे नवनीत, जुलाई १९७८ में प्रकाशित हुआ है, यह भी लिखा है—'भगवान् श्रीरामने रावणवधके पश्चात् हिंगुलामें जाकर ब्रह्महत्यापापसे मुक्ति पाने–हेतु तपस्या की थी। यहाँपर हिंगलाजपर्वतके शिखरसे लटकती हुई एक विशाल शिला है, जिसपर सूर्य और चन्द्र अंकित हैं। इसे भगवान् श्रीरामने अपनी उपस्थिति एवं तपःसाधना प्रमाणित करनेके लिये अपने हाथोंसे अंकित किया था।' सन् १९७४में गोंडामें निर्मित हिङ्गलाज माँके मन्दिरके शिखरभागमें भी सूर्य एवं चन्द्रमाका अंकन भी एक रहस्यपूर्ण विषय है।

विभिन्न स्थानोंपर विभिन्न रूपमें माँ इस प्रकार विद्यमान हैं—असममें कामाख्या, केरलमें कुमारी, कांचीमें कामाक्षी, गुजरातमें अम्बा, प्रयागमें ललिता, विन्ध्याचलमें अष्टभुजा, कांगड़ामें ज्वालामुखी, वाराणसीमें विशालाक्षी, गयामें मंगलचण्डी, बंगालमें सुन्दरी, नेपालमें गुह्येश्वरी, मालवमें कालिका। वस्तुतः इन १२ रूपोंमें आदिशक्ति माँ हिंगुला ही सुशोभित हैं। हिंगुलादेवीका दर्शन, स्तवन, स्मरण–चिन्तन–ध्यान सभी मंगलमय भविष्यके निर्माता हैं।

भगवान् कृष्णको छप्पन भोग क्यों लगाते हैं?

बालकृष्णकी अष्टयाम सेवाका विधान है, इसके अन्तर्गत उन्हें आठ बार भोग भी लगाया जाता है। भगवान् श्रीकृष्णको ५६ प्रकारके व्यंजन परोसे जाते हैं, जिसे ५६ भोग कहा जाता है। बालगोपालको लगाये जानेवाले इस भोगकी बड़ी महिमा है। भगवान् श्रीकृष्णको अर्पित किये जानेवाले ५६ भोगके सम्बन्धमें कई रोचक कथाएँ हैं।

(१) एक कथाके अनुसार माता यशोदा बालकृष्णको एक दिनमें अष्ट प्रहर भोजन कराती थीं। एक बार जब इन्द्रके प्रकोपसे सारे व्रजको बचानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको उठाया था, तब लगातार ७ दिन तक भगवान्ने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया।

८वें दिन जब भगवान्ने देखा कि अब इन्द्रकी वर्षा बन्द हो गयी है, तब सभी व्रजवासियोंको गोवर्धन पर्वतसे बाहर निकल जानेको कहा, तब दिनमें ८ प्रहर भोजन करनेवाले बालकृष्णको लगातार ७ दिनतक भूखा रहना उनके व्रजवासियों और मैया यशोदाके लिये बड़ा कष्टप्रद हुआ। तब भगवान्के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धाभक्ति दिखाते हुए सभी व्रजवासियोंसहित यशोदा माताने ७ दिन और अष्ट प्रहरके हिसाबसे ७×८=५६ व्यंजनोंका भोग बालगोपालको लगाया।

(२) एक अन्य मान्यताके अनुसार ऐसा कहा जाता है कि गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्ण राधिकाजीके साथ एक दिव्य कमलपर विराजते हैं। उस कमलकी ३ परतें होती हैं। इसके तहत प्रथम परतमें ८, दूसरीमें १६ और तीसरीमें ३२ पंखुड़ियाँ होती हैं। इस प्रत्येक पंखुड़ीपर एक प्रमुख सखी और मध्यमें भगवान् विराजते हैं, इस तरह कुल पंखुड़ियोंकी संख्या ५६ होती हैं। यहाँ ५६ संख्याका यही अर्थ है। अत: ५६ भोगसे भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सखियोंसंग तृप्त होते हैं।

(३) एक अन्य श्रीमद्भागवत-कथाके अनुसार गोपिकाओंने श्रीकृष्णको पतिरूपमें पानेके लिये १ माह तक यमुनामें भोरमें ही न केवल स्नान किया, अपितु कात्यायिनी माँकी पूजा-अर्चना की, ताकि उनकी यह मनोकामना पूर्ण हो। तब श्रीकृष्णने उनकी मनोकामना-पूर्तिकी सहमति दे दी। तब व्रत-समाप्ति और मनोकामना पूर्ण होनेके उपलक्ष्यमें ही उद्यापनस्वरूप गोपिकाओंने ५६ भोगका आयोजन करके भगवान् श्रीकृष्णको भेंट किया।

छप्पन भोग

[भगवान्को चढ़ाये जानेवाले व्यंजनोंके नाम]

हिन्दू धर्ममें भगवान्को छप्पन भोगका प्रसाद चढ़ानेकी बड़ी महिमा है। भगवान्को लगाये जानेवाले भोगके लिये ५६ प्रकारके व्यंजन परोसे जाते हैं, जिसे छप्पन भोग कहा जाता है। छप्पन भोगमें परिगणित व्यंजनोंके नाम इस प्रकार हैं—

१-भक्त (भात), २-सूप (दाल), ३-प्रलेह (चटनी), ४-सदिका (कढ़ी), ५-दधिशाकजा (दही-शाककी कढ़ी), ६-शिखरिणी (सिखरन), ७-अवलेह (लपसी), ८-बालका (बाटी), ९-इक्षु खेरिमी (मुरब्बा), १०-त्रिकोण (शर्करायुक्त), ११-बटक (बड़ा), १२-मधुशीर्षक (मठरी), १३-फेणिका (फेनी), १४-परिष्टश्च (पूरी), १५-शतपत्र (खाजा), १६-सधिद्रक (घेवर), १७-चक्राम (मालपूआ), १८-चिल्डिका (चिल्ला), १९-सुधाकुंडलिका (जलेबी), २०-घृतपूर (मेसू), २१-वायुपूर (रसगुल्ला), २२-चन्द्रकला (पगी हुई), २३-दधि (दहीरायता), २४-स्थूली (थूली), २५-कर्पूरनाड़ी (लौंगपूरी), २६-खंड मंडल (खुरमा), २७-गोधूम (गेहूँका दलिया), २८-परिखा, २९-सुफलाढ्या (सौंफयुक्त), ३०-दधिरूप (बिलसारू), ३१-मोदक (लड्डू), ३२-शाक (साग), ३३-सौधान (अधानौ अचार), ३४-मंडका (मोठ), ३५-पायस (खीर), ३६-दधि (दही), ३७-गोघृत (गायका घी), ३८-हैयंगवीनम (मक्खन), ३९-मंडूरी (मलाई),४०-कूपिका (रबड़ी), ४१-पर्पट (पापड़), ४२-शक्तिका (सीरा), ४३-लसिका (लस्सी), ४४-सुवत, ४५-संधाय (मोहन), ४६-सुफला (सुपारी), ४७-सिता (इलायची), ४८-फल, ४९-ताम्बूल, ५०-मोहनभोग, ५१-लवण, ५२-कषाय, ५३-मधुर, ५४-तिक्त, ५५-कटु, ५६-अम्ल।

['वेब दुनिया'से साभार]

संत-चरित—

गुरु नानक

गुरु नानकजीका जन्म वि० संवत् १५२६ में पंजाबके तालबन्दी नामक ग्राममें एक क्षत्रियके घर हुआ था। आपके पिताका नाम कालूराम था। नानकजीका स्वभाव पिताकी अपेक्षा माताकी प्रकृतिसे बहुत अधिक मिलता था। सबसे पहले नानकको जब ककहरा सिखानेके लिये गुरुजीके पास बैठाया गया, तब नानकने उनसे कहा कि 'आप मुझे ऐसी शिक्षा दीजिये, जिससे मेरा मायाका बन्धन टूट जाय।' इस समय नानकजीकी अवस्था छः वर्षकी थी। गुरुने नानकको धमका दिया। इसके बाद एक दिन फिर नानकने गुरुजीसे कहा, 'आप जो धर्म करते हैं, वह तो धर्मका ऊपरी रूप है, मनकी पवित्रता और इन्द्रियनिग्रहकी सबसे पहले आवश्यकता है। भगवान्‌की पूजा केवल भोग लगानेसे ही नहीं होती। सरल और शुद्ध चित्तसे भक्ति-पुष्पके द्वारा जो पूजा की जाती है, वही सच्ची पूजा है।'

नानक बचपनमें ही ध्यानका अभ्यास करने लगे थे और कई बार वे ध्यानकी अवस्थामें बहुत देरतक घर नहीं आया करते थे। एक दिन ध्यानके समय माताने उनसे भोजन करनेको कहा, पर उन्होंने भोजन करना नहीं चाहा। माता-पिताने सोचा कि लड़का बीमार हो गया। वैद्य बुलाये गये, नानकने वैद्यसे कहा, 'महाशय! आप मेरी बीमारीको दवासे दूर करना चाहते हैं, पर आपके अन्दर जो काम-क्रोधकी बीमारी मौजूद है, उसे हटाकर आप आत्माको स्वस्थ क्यों नहीं करते?' 'मुझे कोई शारीरिक रोग नहीं है, मेरे प्राण तो उस परमात्माकी प्राप्तिके लिये व्याकुल हैं, मेरे लिये आप क्या उपाय करेंगे?'

कालूरामके खेतीका काम था। उसने एक दिन नानकको खेतकी रखवालीके लिये भेजा, खेतमें बहुत-सी चिड़िया आ गयीं, उनके उड़ानेके बदले आप आनन्दसे गाने लगे—***'रामदी चिड़ियां रामदा खेत। खा लो चिड़ियां भर भर पेट'***पिता इससे बहुत नाराज हुए। एक बार पिताने समझाते हुए नानकसे कहा कि 'बेटा! तुम खेतीका काम करने लगो तो तुम्हें भी लोग निठल्लू न कहें और हमें भी आराम मिले।' नानकने नम्रतापूर्वक कहा 'पिताजी! मेरे खेतकी जमीन बहुत लम्बी-चौड़ी है, उसमें मैंने भगवान्‌के नामका बीज बो दिया है, बड़ी फसल होगी, मेरी इस खेतीमें जो फल फलेगा, उस फलको खानेवाले पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होंगे।'

पिताने दूकान करनेके लिये कहा तो आप बोले कि 'संसारमें चारों ओर मेरी दूकानें हैं, पर उनमें बाजारू माल नहीं है, मेरी दूकानमें विवेक और वैराग्यका माल भरा है, इन चीजोंको जो लेंगे, वे सहजमें ही भवसागरसे पार हो जायँगे।'

कालूरामने एक बार बीस रुपये देकर बाला नामक नौकरके साथ नानकको विदेश भेजा। नानकजी रास्तेमें ही उन रुपयोंसे साधुओंकी सेवाकर खाली हाथ वापस लौट आये। कालूरामको इससे बड़ा क्रोध हुआ, परंतु रायबुलार नामक एक सज्जनने नानकके गुणोंपर मुग्ध होकर कालूरामको वह रुपये चुका दिये, इससे वह शान्त हो गया।

एक बार नानक पाकपट्टनके मेलेमें गये और वहाँ बाबा फरीदकी गद्दीके एक फकीरसे मिले, मुसलमान धर्मकी चर्चा होनेपर नानकने कहा कि 'सच्चा मुसलमान वह है, जो सन्तोंके मार्गको अच्छा समझे, अभिमान

छोड़ दे, ईश्वरके नामपर दान दे, जीने-मरनेके सन्देहको मिटा दे, ईश्वरकी इच्छापर सन्तुष्ट रहे, अपने पुरुषार्थका अभिमान छोड़ दे और सब जीवोंपर दया करे।'

कालूराम जब बहुत ही नाराज हो गये, तब नानककी बहन बीबी नानकी उनको अपने ससुराल सुलतानपुर ले गयी और वहाँ अपने पतिसे कहकर नवाबका भंडारी बनवा दिया। नानक यहाँ भी हरदम भजन, कीर्तन और साधु-महात्माओंका संग किया करते थे। वहाँ नानकपर भण्डारके रुपये उड़ानेका लांछन लगाया गया, पर ईश्वरकृपासे हिसाब ठीक निकला। अन्तमें नानकने उस कामको भी छोड़ दिया और संन्यासी होकर घरसे निकल पड़े। इससे पहले ही उनके मनकी गति बदलनेके लिये माता-पिताने विवाह कर दिया था। श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द नामके दो पुत्र भी हो गये थे। परंतु स्त्री-पुत्र नानकका चित्त आकर्षित नहीं कर सके। बाला और मरदाना नामक दो व्यक्ति नानकके साथ हो गये थे। इसके बाद नानकका सारा जीवन धर्म और भक्तिके प्रचारमें बीता। नानक निराकारके उपासक और राममन्त्रके बड़े पक्षपाती थे। बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ नानकपर आयीं, परंतु नानकने अपने सिद्धान्त और प्रचारका कार्य कभी बन्द नहीं किया।

नानकने अपनी बहनका उपकार जीवनभर माना इसलिये यात्रा समाप्तकर वह सुलतानपुरमें ही आकर रहते थे। नानकने बड़ी-बड़ी चार यात्राएँ कीं। पहली यात्रा संवत् १५५६ वि० के लगभग हुई, इस यात्राको समाप्तकर १५६६ वि०में अपनी बहनके पास दस वर्ष बाद नानक सुलतानपुर पहुँचे।

दूसरी यात्रा संवत् १५६७ वि०में आरम्भ हुई और दो वर्ष बाद सं० १५६८ वि० में समाप्त हुई।

तीसरी यात्रा संवत् १५७० वि०में आरम्भ हुई। इससे आप संवत् १५७३ वि० के लगभगमें अनुमानतः दो वर्ष बाद वापस लौटे।

चौथी यात्रा आपने भारतवर्षके बाहर मुसलमानी देशोंमें की। संवत् १५७५वि०में आप मुसलमानोंके प्रधान तीर्थ मक्कामें पहुँचे। एक दिन रातके समय आप हजरत मुहम्मदकी कब्रकी ओर पैर पसारे सो रहे थे। मुसलमानोंने उत्तेजित होकर कहा, 'इसे मार डालो, यह खुदाके घरकी ओर पाँव पसारे लेटा है।' इसपर नानकने बड़ी शान्तिसे कहा—'भाई! जिस ओर खुदाका घर न हो, उस ओर मेरे पैर कर दो।' कहा जाता है कि वे लोग बाबा नानकके पैर जिस ओर घुमाते थे उसी ओर मुहम्मदकी कब्र दीखती थी, अन्तमें उन लोगोंने नानकको महात्मा समझकर छोड़ दिया और उनसे पूछा कि 'तुम कौन हो?' नानकने कहा—

हिन्दु कहां तो मारिये, मुसलमान भी नांय।
पंचतत्त्वका पूतला, नानक साडा नांव॥

इसके बाद नानकजी मदीना, बगदाद, अलप्पो, ईरान, हिरात, बुखारा होते हुए काश्मीर और स्यालकोट होकर संवत् १५७९ वि० में देश लौटे। इस यात्रामें गुरुनानकके संगी मरदानाजीका ख्वारजू नामक नगरमें देहान्त हुआ।

कहा जाता है कि करतारपुरमें एक दिन ध्यानमें मग्न नानकजीको भगवान्की ओरसे यह आज्ञा हुई कि 'नानक!' मैं तुम्हारी स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम सदा मेरे नामकी घोषणा करके नर-नारियोंको मुक्तिके मार्गपर आरूढ़ करते हो, तुम्हारे इस गीतको जो व्यक्ति सुनेगा और मानेगा उसकी मुक्ति होगी।' भगवान्की यह वाणी सुनकर नानकने अपनेको धन्य समझा। उस समय जो नानकजीने स्तुति की थी, उसको उनके शिष्य अंगदजीने लिख लिया था। इसीको 'जपजी' अथवा 'आदिग्रन्थ' कहते हैं। सिक्खोंका यह परम पूज्य धर्मग्रन्थ है।

दो पुत्र होनेपर भी गुरुनानकने उनसे अधिक योग्य समझकर अंगदको ही अपनी गद्दीपर बैठाया। गुरु नानक संवत् १५९६वि० आश्विनके महीनेमें लगभग सत्तर वर्षकी अवस्थामें उपस्थित भक्त-मंडलीद्वारा होनेवाली परमात्माके नामकी दिग्दिगन्तव्यापिनी ध्वनिको सुनते और भगवान्का 'राम नाम' स्मरण करते हुए सदाके लिये यहाँसे विदा हो गये।

परमात्मामें अटल विश्वास, धैर्य, सत्य, परोपकार, त्याग, कृतज्ञता, उदारता, सन्तोष, विनय, वैराग्य, भक्ति और नाम-प्रेम आदि आपके जीवनमें खास गुण थे!

गो-चिन्तन—

गोसेवाने जीवन-दान दिया

बात जनवरी १९४० की है, तब मेरी आयु लगभग ५-६ वर्षकी रही होगी। पिताजी उत्तरप्रदेशमें पुलिस-विभागसे सेवानिवृत्त हो गये थे। अंग्रेजी शासन था। पूरी बातें तो याद नहीं हैं, किंतु माताजी बताया करती थीं कि पिताजी सेवानिवृत्तिसे पहले कई वर्षोंसे बीमार थे। डॉक्टरोंने सारे दाँत उखाड़ दिये थे, दाँतोंकी वजहसे पेट खराब रहता था। पेटका ही रोग था या अन्य कुछ, पता नहीं चल पाया था। कभी डॉक्टर कहते कि अँतड़ियोंमें तपेदिक हो गयी है, कभी कुछ रोग बताते, कभी कुछ। सेवानिवृत्तिसे पहले पिताजी पर्याप्त समयतक मुरादाबादमें सरकारी अस्पतालमें रहे और कई डॉक्टरोंके बोर्डने मिलकर यह घोषित कर दिया कि 'ये अब सरकारी नौकरी करनेके योग्य नहीं रह गये हैं।' उस निर्णयके आधारपर पिताजी अपने ग्राम बुलंदशहर आ गये।

मुझे इतना स्मरण है कि जिस समय पिताजी घर आये थे, उनकी दशा बहुत ही खराब थी, बिलकुल अस्थिपंजर रह गये थे। जमीनपर पड़े रहते थे। माताजी बताती थीं कि मुरादाबादके डॉक्टरोंने जवाब दे दिया था कि अब ये कुछ समय ही रह सकेंगे।

पिताजीकी ऐसी दशा देखकर गाँवके लोग आते और यह कहते कि मुँहमें गंगाजल डालते रहो। सभी चिन्तित थे। अचानक एक घटना घटी। हमारे पूर्वजोंमें पुरोहितीका कार्य होता चला आया था। दूर गाँवके कोई यजमान एक गऊ लेकर आये और पिताजीसे कहने लगे—'पण्डितजी! यह गऊ मैंने गुरुजी (मेरे बाबाजी)-को दानके निमित्त संकल्पित की थी'। गोदानके संकल्पसे मेरा कार्य हो गया, अतः मैं यह गऊ बछड़ेसहित आपके यहाँ पहुँचाने आया हूँ।' मेरे बाबाजी, जब मैं एक वर्षका था, स्वर्गवासी हो चुके थे। वे यजमान गऊको पहुँचाकर अपने घर चले गये। उधर माताजीने उस नयी ब्यायी गऊके पैरोंपर जल डालकर पारम्परिक रीतिसे उसकी पूजा की तथा उसके बाँधने, चारा आदिका प्रबन्ध किया, दूध निकाला, थोड़ा दूध चम्मचसे पिताजीको भी पिलाया। यह क्रम दो-चार दिन चलता रहा। फिर तो पिताजीको, जिन्हें न रातको नींद आती थी न दिनको, रात-दिन तड़पते रहते थे, दूधके प्रभावसे थोड़ी-थोड़ी नींद आने लगी।

यह देखकर मुझे तो कुछ समझमें नहीं आया, किंतु माताजी तथा अन्य लोग इसे गोदुग्धका चमत्कार ही बतलाते थे। फिर तो रात-दिन पिताजी गऊका दूध, कुछ छाछ, दही आदि माँग-माँगकर पिया करते। शनैः-शनैः वे वैसे ही ठीक होते चले गये, जैसे किसी सूखी मृतप्राय बेलको पानीसे सींच दिया गया हो और उसमें जीवन आ गया हो। मुझे याद है, पिताजी स्वस्थ-से होते चले गये। उठने-बैठने, चलने-फिरने लगे। गऊके लिये खेतोंसे घास काटकर, चारा काटकर लाते, मुझे भी साथ ले जाते। वे घास काटते और मैं उसे इकट्ठी करता जाता। उस समय मैं लगभग ६-७ सालका रहा हूँगा। पिताजी ही अपने सिरपर गठरी लाते। फिर उन्होंने पासके एक गाँवमें स्कूल खोल दिया और फिर तो गायकी सेवा करना और बच्चोंको शिक्षित करना, यही उनके जीवनका ध्येय बन गया। उसी गोसेवाके फलस्वरूप वे बीमारीसे ठीक होकर पूरे चौबीस वर्ष १९६४ अक्टूबरतक जीवित रहे और उसी गऊ माताके आशीर्वादसे आज हमारा परिवार सब प्रकारसे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ रहा है।—**शिवकुमार शर्मा**

गो-प्रदक्षिणा

गवां दृष्ट्वा नमस्कृत्य कुर्याच्चैव प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणी कृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः। वृद्धिमाकाङ्क्षतः नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणा॥

'गोमाताका दर्शन एवं उन्हें नमस्कार करके उनकी परिक्रमा करे। ऐसा करनेसे सातों द्वीपोंसहित भूमण्डलकी प्रदक्षिणा हो जाती है। गौएँ समस्त प्राणियोंकी माताएँ एवं सारे सुख देनेवाली हैं। वृद्धिकी आकांक्षा करनेवाले मनुष्यको नित्य गौओंकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।'

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्तऋतु, मार्गशीर्ष-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।२१ बजेतक	शनि	रोहिणी रात्रिमें ६।३८बजेतक	२० नवम्बर	× × × ×
द्वितीया सायं ५।३१ बजेतक	रवि	मृगशिरा अहोरात्र	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ६।३४ बजेसे, **मिथुनराशि** रात्रिमें ७।५६ बजेसे।
तृतीया रात्रिमें ७।३८ बजेतक	सोम	,, दिनमें ९।१५ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।३८ बजेतक, **सायन धनुका सूर्य** रात्रिमें ८।११ बजे।
चतुर्थी ,, ९।२९ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, ११।४१ बजेतक	२३ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।११ बजे।
पंचमी ,, ११।१ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, १।५१ बजेतक	२४ ,,	**कर्कराशि** प्रात: ७।१८ बजेसे।
षष्ठी ,, १२।४ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, ३।३५ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।४ बजेसे, **मूल** दिनमें ३।३५ बजेसे।
सप्तमी ,, १२।३९ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा सायं ४।५२ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।२३ बजेतक, **सिंहराशि** सायं ४।५२ बजेसे।
अष्टमी ,, १२।४२ बजेतक	शनि	मघा ,, ५।३९ बजेतक	२७ ,,	**मूल** सायं ५।३९ बजेतक।
नवमी ,, १२।१५ बजेतक	रवि	पू०फा० रात्रिमें ५।५५ बजेतक	२८ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें ११।५२ बजेसे।
दशमी ,, ११।१९ बजेतक	सोम	उ०फा० सायं ,, ५।४३ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।४८ बजेसे रात्रिमें ११।१९ बजेतक।
एकादशी ,, ९।५८ बजेतक	मंगल	हस्त ,, ५।५ बजेतक	३० ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ४।३७ बजेसे, **उत्पन्ना एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ८।१६ बजेतक	बुध	चित्रा ,, ४।९ बजेतक	१ दिसम्बर	× × × ×
त्रयोदशी ,, ६।१८ बजेतक	गुरु	स्वाती दिनमें २।५३ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ६।१८ बजेसे रात्रिशेष ५।१२ बजेतक, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी सायं ४।६ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, १।२४ बजेतक	३ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें ७।४६ बजेसे, **ज्येष्ठाका सूर्य** दिनमें ११।१२ बजे।
अमावस्या दिनमें १।४६ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ११।४६ बजेतक	४ ,,	**अमावस्या, मूल** दिनमें ११।४६ बजेसे।

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्तऋतु, मार्गशीर्ष-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११।२५ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा दिनमें १०।६ बजेतक	५ दिसम्बर	**धनुराशि** दिनमें १०।६ बजेसे।
द्वितीया ,, ९।५ बजेतक	सोम	मूल ,, ८।२७ बजेतक	६ ,,	**मूल** दिनमें ८।२७ बजेतक।
तृतीया प्रात: ६।५३ बजेतक	मंगल	पू०षा० प्रात: ६।५४ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ५।५२ बजेसे रात्रिशेष ४।५१ बजेतक, **मकरराशि** दिनमें १२।३३ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थी व्रत।**
पंचमी रात्रिमें ३।६ बजेतक	बुध	श्रवण रात्रिमें ४।२७ बजेतक	८ ,,	**श्रीरामविवाह।**
षष्ठी ,, १।४० बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, ३।४२ बजेतक	९ ,,	**कुम्भराशि** सायं ४।५ बजेसे, **पंचकारम्भ** सायं ४।५ बजे।
सप्तमी ,, १२।३९ बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, ३।२० बजेतक	१० ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।३९ बजेसे।
अष्टमी ,, १२।५ बजेतक	शनि	पू०भा० ,, ३।२६ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।२२ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें ९।२४ बजेसे।
नवमी ,, १२।१ बजेतक	रवि	उ०भा० ,, ४।१ बजेतक	१२ ,,	**मूल** रात्रिमें ४।१ बजेसे।
दशमी ,, १२।३० बजेतक	सोम	रेवती रात्रिशेष ५।८ बजेतक	१३ ,,	**मेषराशि** रात्रिशेष ५।८ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिशेष ५।८ बजे।
एकादशी ,, १।२९ बजेतक	मंगल	अश्वनी ,, ६।४१ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।५९ बजेसे रात्रिमें १।२९ बजेतक, **मोक्षदाएकादशीव्रत** (सबका) **श्रीगीता-जयन्ती, मूल** रात्रिशेष ६।४१ बजेतक।
द्वादशी ,, २।५५ बजेतक	बुध	भरणी अहोरात्र	१५ ,,	× × × ×
त्रयोदशी ,, ४।४३ बजेतक	गुरु	भरणी प्रात: ८।४३ बजेतक	१६ ,,	**वृषराशि** दिनमें ३।१७ बजेसे, **प्रदोषव्रत, धनुसंक्रान्ति** दिनमें १।१ बजे, **खरमासारम्भ।**
चतुर्दशी अहोरात्र	शुक्र	कृत्तिका दिनमें ११।३ बजेतक	१७ ,,	× × × ×
चतुर्दशी प्रात: ६।४८ बजेतक	शनि	रोहिणी ,, १।३७ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।४८ बजेसे रात्रिमें ७।५३ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिमें २।५६ बजेसे, **व्रतपूर्णिमा।**
पूर्णिमा दिनमें ८।५८ बजेतक	रवि	मृगशिरा सायं ४।१५ बजेतक	१९ ,,	**पूर्णिमा।**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१-२०२२, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्तऋतु, पौष-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११।५ बजेतक	सोम	आर्द्रा रात्रिमें ६।४४ बजेतक	२० दिसम्बर	× × × ×
द्वितीया ,, १२।५६ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, ८।५९ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।४१ बजेसे, **कर्कराशि** दिनमें २।२५ बजेसे।
तृतीया ,, २।२६ बजेतक	बुध	पुष्य ,, १०।५० बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें २।२६ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७।५५ बजे, **मूल** रात्रिमें १०।५० बजेसे**, सायन मकरका सूर्य** प्रात: ७।३ बजे।
चतुर्थी ,, ३।२८ बजेतक	गुरु	आश्लेषा ,, १२।१५ बजेतक	२३ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें १२।१५ बजेसे।
पंचमी सायं ४।१ बजेतक	शुक्र	मघा रात्रिमें १।९ बजेतक	२४ ,,	**मूल** रात्रिमें १।९ बजेतक।
षष्ठी ,, ४।२ बजेतक	शनि	पू०फा० ,, १।३३ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** सायं ४।२ बजेसे रात्रिमें ३।४७ बजेतक।
सप्तमी दिनमें ३।३२ बजेतक	रवि	उ०फा० ,, १।२७ बजेतक	२६ ,,	**कन्याराशि** प्रात: ७।३१ बजेसे।
अष्टमी ,, २।३४ बजेतक	सोम	हस्त ,, १२।५६ बजेतक	२७ ,,	**अष्टकाश्राद्ध।**
नवमी ,, १।२२ बजेतक	मंगल	चित्रा ,, १२।५ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।२१ बजेसे, **तुलाराशि** दिनमें १२।३० बजेसे।
दशमी ,, ११।२९ बजेतक	बुध	स्वाती ,, १०।५३ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।२९ बजेतक, **पू०षा०** का **सूर्य** दिनमें १।५९ बजे।
एकादशी ,, ९।३० बजेतक	गुरु	विशाखा ,, ९।२७ बजेतक	३० ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें ३।४८ बजेसे, **सफला एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी प्रात: ७।१८ बजेतक	शुक्र	अनुराधा ,, ७।५१ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४।५८ बजेसे, **प्रदोषव्रत, मूल** रात्रिमें ७।५१ बजेसे।
चतुर्दशी रात्रिमें २।३६ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, ६।१० बजेतक	१ जनवरी	**भद्रा** दिनमें ३।४८ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ६।१० बजेसे, **सन् २०२२ प्रारम्भ।**
अमावस्या ,, १२।१६ बजेतक	रवि	मूल सायं ४।३१ बजेतक	२ ,,	**अमावस्या, मूल** सायं ४।३१ बजेतक।

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन-उत्तरायण, हेमन्त-शिशिरऋतु, पौष-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।४ बजेतक	सोम	पू०षा० दिनमें २।५६ बजेतक	३ जनवरी	**मकरराशि** रात्रिमें ८।३५ बजेसे।
द्वितीया ,, ८।४ बजेतक	मंगल	उ०षा० ,, १।३२ बजेतक	४ ,,	× × × ×
तृतीया ,, ६।२० बजेतक	बुध	श्रवण ,, १२।२३ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५।३९ बजेसे, **कुम्भराशि** रात्रिमें ११।५९ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ११।५९ बजे।
चतुर्थी सायं ४।५७ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, ११।३४ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** सायं ४।५७ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ३।५७ बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, ११।६ बजेतक	७ ,,	**मीनराशि** रात्रिशेष ५।५ बजेसे।
षष्ठी दिनमें ३।२७ बजेतक	शनि	पू०भा० ,, ११।५ बजेतक	८ ,,	× × × ×
सप्तमी ,, ३।२६ बजेतक	रवि	उ०भा० ,, ११।३३ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।२६ बजेसे रात्रिमें ३।४२ बजेतक, **मूल** दिनमें ११।३३ बजेसे।
अष्टमी ,, ३।५६ बजेतक	सोम	रेवती ,, १२।३२ बजेतक	१० ,,	**मेषराशि** दिनमें १२।३२ बजेसे, **पंचक** समाप्त दिनमें १२।३२ बजे।
नवमी सायं ४।५८ बजेतक	मंगल	अश्वनी ,, २।५ बजेतक	११ ,,	**उ०षा०**का **सूर्य** दिनमें २।३६ बजे, **मूल** दिनमें २।५ बजेतक।
दशमी रात्रिमें ६।२७ बजेतक	बुध	भरणी सायं ३।५७ बजेतक	१२ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें १०।३१ बजेसे।
एकादशी ,, ८।१६ बजेतक	गुरु	कृत्तिका रात्रिमें ६।१३ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।२१ बजेसे रात्रिमें ८।१६ बजेतक, **पुत्रदा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, १०।२३ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ८।४५ बजेतक	१४ ,,	**मकरसंक्रान्ति** रात्रिमें ८।४९ बजे, **खरमास** समाप्त, **शिशिरऋतु** प्रारम्भ।
त्रयोदशी ,, १२।३३ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, ११।२२ बजेतक	१५ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें १०।३ बजेसे, **शनिप्रदोषव्रत, सूर्योदयसे संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल, खिचड़ी।**
चतुर्दशी ,, २।३८ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, १।५५ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।३८ बजेसे।
पूर्णिमा ,, ४।२८ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, ४।१३ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।३४ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ९।३८ बजेसे, **पूर्णिमा।**

कृपानुभूति

गायत्री मन्त्रके जपका प्रभाव

गायत्री वेदमाता हैं, गायत्री मन्त्र महामन्त्र है, इसका श्रद्धा-विश्वासपूर्वक किया गया जप संकटसे रक्षा करता है। मेरा इस विषयमें स्वयंका अनुभव इस प्रकार है—मैं पिछले कई वर्षोंसे पोस्टमास्टरके पदपर कार्यरत हूँ। सन् २०१२ ई० में दीपावली अवकाशके एक दिन पूर्व मैंने अधीनस्थ समस्त कर्मचारियोंको कहा कि 'दीपावलीके दूसरे दिन व्यापारिक क्षेत्र होनेके नाते प्रतिपदाको डाकघरमें कोई नहीं आता है, आप लोग भी यदि नहीं आना चाहते हैं तो एक-एक दिनका अवकाश ले सकते हैं।' सभीने अवकाश ले लिया, तभी सफाईकर्मी बिरजूने कहा—'साहब! यदि मैं आज शामको डाकघरकी पूरी सफाई कर दूँ तो कैसा रहेगा, जिससे मुझे भी दीपावलीके दूसरे दिन (प्रतिपदा)-को सफाईके वास्ते नहीं आना पड़े।' मैंने भी मानवीय आधारपर हाँ कर दिया।

दीपावलीके दूसरे दिनकी घटना है—मैं प्रात: लगभग नौ बजे कार्यालयमें जाकर बैठा था, कार्यालयमें सभीके अवकाशमें होनेके कारण अकेला ही था। अचानक प्रधान डाकघरसे मेरे मोबाइलपर फोन आया। मैं बात करने लगा, तभी मेरे बाँयें सीनेमें भयंकर दर्द होने लगा, दर्द इतना अधिक बढ़ गया कि मैं जोर-जोरसे रोने लगा, तबतक मेरा मोबाइल भी हाथसे छूट गया था, मैं पूरी तरहसे समझ चुका था कि यह 'हार्ट अटैक' है। सुरक्षाकी दृष्टिसे केवल मुख्यद्वार खुला था, बाकी सभी बन्द थे। मुझे लगा कि अब प्राणान्त ही होना है, अत: प्रभु-प्रेरणासे रोते-रोते गायत्री मन्त्रका जप करने लगा। धीरे-धीरे शिथिलता बढ़ती जा रही थी, तभी अचानक सफाईकर्मी बिरजू देवदूत बनकर आ गया, उसने मेरी स्थिति देखकर आवाज लगायी, परंतु मैं कुछ बोल नहीं पाया, तुरन्त बिरजू भागकर सड़कपर गया और एक व्यक्तिको लेकर आया। उसने मेरी स्थितिको देखते ही सीनेपर जोर-जोरसे कई चोटें मारीं तथा उठाकर मेजपर लिटाकर सीनेको रगड़ना शुरू किया। कुछ हलका आराम मिलनेपर मैंने मोबाइलकी ओर संकेत किया। उसने मेरा मोबाइल लेकर मुझसे घरका नम्बर पूछा; मैंने साहस बटोरकर अपने लड़कोंके नाम बताये। उसने मोबाइलमें नम्बर निकालकर बच्चोंको सारी स्थिति बताते हुए कहा कि 'तुरंत आओ'; कुछ ही क्षणोंमें बच्चे गाड़ी लेकर आ गये। मुझे लेकर 'हृदय रोग संस्थान' गये। इस पूरे घटनाक्रममें मैं सतत गायत्री मन्त्रका जप कर रहा था; क्योंकि मैं पूरी तरहसे समझ रहा था कि परमात्मा ही मुझे बचा सकते हैं। स्वास्थ्य-लाभ होनेके पश्चात् जब मैं कार्यालय गया तो मैंने बिरजूसे पूछा कि तुम्हें तो उस दिन (प्रतिपदाको) कार्यालय आना नहीं था, फिर अचानक कैसे आ गये थे? बिरजूने जो उत्तर दिया, उसने वास्तवमें मेरे मनमें गायत्री मन्त्रके जपकी भावनाको और अधिक सुदृढ़ कर दिया। उसने कहा—'साहब! मैं बिलकुल नहीं आना चाहता था, परंतु अचानक मेरे मनमें बार-बार यह आया कि साहब अकेले बैठे होंगे, चलो कुछ देरके लिये ऑफिस घूम आयें और मैं चला आया, जब कि मेरे पारिवारिक जन कह रहे थे कि जब पोस्टमास्टर साहबने अवकाश दे दिया है तो क्यों जा रहे हो? फिर भी मैं चला आया।'

मुझे पूरा विश्वास हो गया कि गायत्री मन्त्रका ही चमत्कारी प्रभाव था कि बिरजूने आकर मेरे प्राणोंकी रक्षा की। बचपनसे ही मैं चलते-फिरते ऑफिसमें कार्य करते हुए गायत्री मन्त्रका जप करता आ रहा हूँ, जिसके प्रभावसे संकटके समय मेरा जीवन बचा। आज अब तो प्रभुसे एक ही प्रार्थना है कि 'हे नाथ! मेरा गायत्री मन्त्रका जप एवं नाम-संकीर्तन निरन्तर चलता रहे।'

—शिवभूषण सिंह सेंगर 'सलिल'

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सिख युवककी सहृदयता

कभी-कभी हमारे जीवनमें ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं, जिनकी अमिट छाप हमारे मन-मस्तिष्कमें सदैवके लिये अंकित हो जाती है। एक ऐसी ही घटना मेरे मस्तिष्कमें आज भी स्मृत हो उठती है, जो हर व्यक्तिके लिये आजके युगमें प्रेरणाप्रद है।

लगभग ६०-६५ वर्ष पुरानी यह घटना है, जब मेरी आयु लगभग ८-१० वर्षकी रही होगी। मैं अपने पैतृक कस्बे माड़लगढ़ (जि० भीलवाड़ा, राज०)-में प्राथमिक शालाका छात्र था। मेरे पूज्य पिताजी छोटी सादड़ी (जि० चित्तौड़गढ़ राज०)-में न्यायालयमें वरिष्ठ लिपिकके पदपर कार्यरत थे। मैं, मेरी माताजी एवं बड़ी बहन माड़लगढ़में ही दुर्गपर स्थित अपने मकानमें रहते थे। उन दिनों मुझे अपनी माताजी और बहनके साथ अपने ननिहाल बेगूँ (जि० चित्तौड़गढ़) एक सामाजिक कार्यमें भाग लेनेके लिये जाना पड़ा। मेरे मामाजीके बड़े पुत्रका विवाह था। विवाहका मंगल कार्य सम्पन्न होनेके पश्चात् हमें अपने पिताजीके कार्यस्थल छोटी सादड़ी जाना था। उन दिनों आवागमनके साधन काफी कम थे। नाममात्रकी बसें चला करती थीं।

बेगूँसे नीमचके बीच एक प्राइवेट बस चलती थी, जो घाटा राणी होकर रतनगढ़ (म०प्र०) होती हुई नीमच (म०प्र०) जाती थी। नीमचसे छोटी सादड़ी केवल १० कि०मी० ही दूर थी। नीमच पहुँचनेका अर्थ छोटी सादड़ीके पास पहुँचना ही था। मार्गमें घाटा राणी देवीका मन्दिर भी था, जो एक पहाड़ीपर स्थित था। यह मन्दिर काफी लोकप्रिय एवं देवीके भक्तोंकी आस्थाका केन्द्र भी रहा है।

बसका मार्ग घाटा राणीके घने जंगलमें-से होकर गुजरता था। हमारी बस दिनके २ बजेके लगभग रवाना हुई थी। मार्गमें घाटीपर अचानक बसका ब्रेक फेल हो गया। बसके ड्राइवरने गाड़ी रोक दी और यात्रियोंको भगवान् भरोसे छोड़कर पासके कस्बेमें चला गया, ताकि किसी मिस्त्रीको लाकर बसको ठीक करा सके। शाम हो गयी, पर ड्राइवर नहीं आया। रात्रि होनेको आयी। आस-पासके गाँवोंमें रहनेवाले बस यात्री पैदल ही अपने घरोंको लौट गये। लगभग सभी यात्रियोंसे बस खाली हो गयी थी। बसमें २०-२२ वर्षका एक सिख युवक भी बैठा था, उससे अन्य यात्रियोंने कहा कि सरदारजी, आप भी हमारे साथ गाँवमें चले चलिये। सुबह वापस आ जाना, तबतक बस भी ठीक हो जायगी। यात्रियोंकी यह बात सुनकर वह सिख युवक तीव्र स्वरमें बोला—'भाइयो, आप लोगोंको शर्म आना चाहिये।' हमारी ओर इशाराकर वह फिर बोला, 'इन माताजीको और बहन-भाईको मैं किसके भरोसे छोड़कर जाऊँ? आप लोग जाओ, जबतक बस ठीक नहीं होगी, मैं इन्हें अकेला छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।'

युवककी बातपर ध्यान न देकर सब पैसेंजर चले गये। मेरी माताजी घाटा राणी देवीकी भक्त थीं, वे मन-ही-मन देवीसे सहायताकी पुकार करने लगीं। संयोग या देवीकी अनुकम्पा, थोड़ी देरमें एक जीप वहाँ आयी और हमारे पास आकर रुकी। युवकने जीपके ड्राइवर एवं उसके मालिकसे बात की। जीप-मालिक सहृदय व्यक्ति था। उसने हमें और सिख युवकको जीपमें बिठाया और नीमच छोड़ दिया। नीमच हम अपने एक रिश्तेदारके घर रुके और सुबह बससे छोटी सादड़ीके लिये प्रस्थान कर गये। सिख युवककी सहृदयता और देवीकी अनुकम्पाकी यह सच्ची घटना आज भी मेरे मस्तिष्कमें अंकित है।

—श्याम मनोहर व्यास

(२)

संकल्पसे सिद्धि

हमारे एक रिटायर्ड मित्र बम्बईमें रहते हैं, वे भारतीय विद्याभवनमें प्राध्यापक थे। बचपनमें उनके

घरमें पढ़नेके लिये रोशनीतकका प्रबन्ध न था। वे म्यूनिसिपैलिटीकी रोशनीमें रातको पढ़ा करते और महाभारतकी चौपाइयाँ बनाया करते। बनारसमें भार्गव प्रेसवाले उनको खानेके लिये दो रुपया रोज देते थे और महाभारतकी चौपाई ले लेते थे। उन्होंने उन्हीं दो-दो रुपयोंसे एम०ए० पास कर लिया। फिर गोरखपुर गीताप्रेसमें आकर कुछ दिन काम करनेके बाद भारतीय विद्याभवनमें अध्यापक हो गये थे। बादमें रेडियो आदिपर गाने लगे और अब उनके लड़के विदेशोंमें बहुत अच्छे ढंगसे काम करते हैं। अत: निराश नहीं होना चाहिये।

पण्डित शिवकुमार शास्त्री इस शताब्दीके सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठित विद्वानोंमेंसे रहे। संस्कृतका ऐसा दिग्गज विद्वान् भारतवर्षमें नहीं हुआ, तो दूसरे देशोंमें तो कल्पना भी क्या हो सकती है। वे बहुत दिनोंतक अपने चाचाके पास एक गाँवमें रहकर भैंस चराते रहे। बादमें 'क' 'ख' सीखनेके लिये उन्होंने कहींसे एक किताब प्राप्त कर ली। एक दिन वे उससे यह 'क' है, यह 'ख' है, यह 'ग' है—सीख रहे थे कि उनकी भैंस दूसरेके खेतमें चली गयी। उसने आकर उनके चाचाको उलाहना दी और जब चाचाने उन्हें किताब पढ़ते देखा तो बड़े जोरसे एक चपत उनके गालपर मारा और कहा कि 'तू पाणिनि-पतंजलि बनना चाहता है या भैंस चराता है?' उस समय वे चुप लगा गये। परंतु घरमें जाकर चाचासे उन्होंने कहा कि 'चाचाजी! अब मैं जा रहा हूँ और मैं पाणिनि-पतंजलि बनकर ही घर लौटूँगा। यदि पाणिनि-पतंजलि न हुआ तो घर न लौटूँगा।' अब वे काशी आ गये और केवल व्याकरणमें ही नहीं, सभी दर्शनों, सभी वेद-वेदांगोंमें अपने समयके अद्वितीय विद्वान् बन गये। आजकलके व्याकरणके पण्डित उन्हें पाणिनि-पतंजलिसे कम नहीं मानते। बनारसमें ही उनका विवाह हुआ। बनारसमें ही उनके चार-पाँच पक्के मकान बने। उनके वंशधरको बहुत प्रतिष्ठा मिली।

कौन-सा साधन, कौन-सा उपकरण उनके पास था? उनके चित्तमें केवल एक दृढ़ निश्चय था। ऐसा दृढ़ संकल्प, ऐसा दृढ़ निश्चय कि उसके विरुद्ध जो कुछ था, सो सब त्याग दिया और पूरे मनोयोगसे जो अपना अभीष्ट था, उसमें अपनी शक्ति लगा दी।

ऐसे ही हमारे सामने एक बंगालके पण्डित थे, हाराणचन्द्र शास्त्री। वे अपने पिता-माताकी मृत्यु हो जानेपर मामाके घर रहते और ठीक भोजनतक नहीं पाते थे। उनका एक आठ बरसका छोटा भाई था। एक दिन दोनों चुपचाप चलकर अपने पिताजीके एक जज मित्रके घर चले गये। जजने उन लोगोंको खिलाया-पिलाया, आदरसे रखा। परंतु पण्डितोंकी जब सभा हुई तो उसमें दूसरे पण्डितोंको तो पाँच-पाँच रुपया दिया और उनको दो रुपया दिया। इसपर उन्होंने कहा—'सबको पाँच-पाँच रुपये देते हो तो हमको भी पाँच रुपये दे दो।' उन्हें कहा गया—'जब तुम पढ़-लिख लोगे तब तुमको भी पाँच रुपये मिलेंगे।' फिर दोनों भाई रातको चुपकेसे जज साहबके यहाँसे निकल पड़े। भूखे-प्यासे चले जा रहे थे। एक मुसलमानने उनको देखा, उनपर दया आ गयी। उन्हें वह अपने घर ले गया। कुम्हारके घरसे मटका और अहीरके यहाँसे दूध मँगाकर गोशालामें खीर बनवायी और उन्हें खिलाया। वहाँसे भागकर वे शिवकुमार शास्त्रीजीके घर काशीमें पहुँचे और अध्ययन किया। उनको भी सन् बयालीसमें ब्रिटिश सरकारने सम्मानित करके महामहोपाध्यायकी सर्वोच्च उपाधिसे विभूषित किया। वे बड़े विद्वान् थे। उनकी रचना 'कालतत्त्वदर्शिनी' संस्कृत भाषामें अद्भुत पुस्तक है।

ये सब संकल्पसे सिद्धिके कतिपय उदाहरण हैं।

—स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

(३)

रचनाकी कोटि

सोहिरोबानाथ महाराष्ट्रमें एक बड़े सन्त हो चुके हैं। वे नाथ-सम्प्रदायमें दीक्षित थे। एक बार घूमते हुए वे मध्यप्रदेशके ग्वालियर नगरमें गये। उस समय वहाँके

शासक महादजी सिन्धिया थे। उन्होंने सोहिरोबानाथको राजसभामें आनेका निमन्त्रण दिया। राजाके सेनापति विजय दादा थे। वे सन्तके ज्ञान और विद्वत्तासे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने सन्तसे मिलकर कहा, 'महाराज एक अच्छे कवि हैं, आप जब उनसे मिलने जायँ तो उनकी काव्य-प्रशंसा अवश्य करें।'

विजय दादाने सोचा था, आत्मप्रशंसासे खुश हो राजा उन्हें अच्छा इनाम देंगे। सन्तने सुना तो चुप रह गये।

दूसरे दिन सन्त राजसभामें गये। राजाने काव्यपाठ किया और सन्तका अभिप्राय जानना चाहा। सोहिरोबा बोले—'महाराज! आपकी कविता मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगी। मेरी रायमें जिस रचनामें भगवान्‌का गुणगान नहीं, वह निष्कृष्ट होती है और जिस कवितामें भगवान्‌की महिमा गायी जाती है, वह उच्चकोटिकी होती है।' सन्तके इस जवाबसे सारी राजसभा सन्न रह गयी। परंतु राजाको बुरा नहीं लगा। सन्तके उपदेशके बाद राजाने अपनी लेखनीका उपयोग भगवान्‌का भजन लिखनेके लिये किया।

—**उमेश प्रसाद सिंह**

(४)

ईमानदार विद्यार्थी

यह बात १६ अगस्त १९७४ की है। मेरे पिताके एक मित्र जो पोस्टऑफिसमें डिवीजनल इन्सपेक्टरके पोस्टपर कार्यरत हैं, १६ अगस्तको करीब नौ बजे रातको प्रधान डाकघरसे अपने घर मोटर साइकिलसे जा रहे थे। वे अपना हैण्डबैग मोटर साइकिलके पीछे केरियरमें दाबे हुए थे। श्रीसिंह जब अपने घर पहुँचे तब देखते हैं कि केरियरमें हैण्डबैग नहीं है। वह बहुत चिन्तित हुए और फौरन मोटर साइकिलपर सवार हुए और पूरे रोडको देखते हुए वापस डाकघर पहुँचे। लेकिन हैण्डबैग दिखायी नहीं पड़ा। वे वहाँसे बहुत निराश होकर घर लौट आये। हैण्डबैग नहीं मिलनेके शोकमें वे रातभर सो नहीं पाये और सुबह होते ही हमारे डेरेपर पहुँचे। उन्होंने सारी बातें हमारे पिताजीसे कह सुनायीं। हमारे पिताजी एक रिटायर्ड पोस्टल ऑफिसर हैं और श्रीसिंहके शुभचिन्तक भी। मेरे पिताजी सारी बातें सुनकर मुझे खबर करने मेरे पास आये और बोले कि श्रीसिंह तुम्हें खोज रहे हैं। मैं फौरन उनसे मिलने पहुँचा। श्रीसिंह बहुत उदास थे। वे बोले—'मेरा बैग कल नौ बजे रातको मोटर साइकिलसे गिर गया। मैं पूरे शहरमें लाउडस्पीकरसे प्रचार करवाना चाहता हूँ।' मैं तुरन्त तैयार हो गया और पूरे शहरमें प्रचार किया। प्रचारमें करीब चार घंटे लगे, लेकिन हैण्डबैगका कहीं भी पता नहीं चला।

श्रीसिंह बहुत निराश होकर बोले—'अब तो भगवान् ही हैं!' 'क्या आप ही जमदारसिंह हैं?' एक अपरिचित व्यक्तिने उस समय पूछा जिस समय श्रीसिंह अपने दरवाजेपर स्नान कर रहे थे। 'हाँ, मेरा ही नाम जमदारसिंह है' श्रीसिंह बोले। विद्यार्थी—'आपका ही हैण्डबैग खो गया है? कल मैंने हैण्डबैग खो जानेका प्रचार सुना, वह हैण्डबैग मुझे परसों रातको रास्तेपर गिरा पड़ा मिला। क्या आपका हैण्डबैग यही है?' श्रीसिंह बोले—'हाँ-हाँ-हाँ, यही हैण्डबैग है!' विद्यार्थी हैण्डबैग बढ़ाते हुए श्रीसिंहसे बोला—'देख लीजिये, आपका सामान सुरक्षित है न!' श्रीसिंहने हैण्डबैग हाथमें लेते हुए भगवान्‌को लाख-लाख धन्यवाद दिये और बोले—'हाँ-हाँ सुरक्षित है।' उस हैण्डबैगमें एक लुंगी, एक राइफलका लाइसेंस, रेलवेका मोतिहारीसे बेतियातकका फोटोसहित मासिक टिकट, एक सौ रुपये तथा बहुत जरूरी सरकारी कागजात थे। सभी सामानोंके साथ हैण्डबैग पाकर श्रीसिंहकी खुशीका ठिकाना न रहा। श्रीसिंहने सौका एक नोट उस अपरिचित व्यक्तिको इनामके तौरपर देनेके लिये हाथ बढ़ाया। उस व्यक्तिने सौका नोट हाथमें न लेते हुए कहा—'सर, यह तो मेरा कर्तव्य था। मैं विद्यार्थी हूँ।'—**राजकिशोर**

मनन करने योग्य

भीमसेनका गर्व-भंग

भीमसेनको अपनी शक्तिका बड़ा गर्व था। एक बार वनवास-कालमें जब ये लोग गन्धमादन पर्वतपर रह रहे थे, तब द्रौपदीको एक सहस्रदल-कमल वायुकोणसे उड़ता आता दीखा। उसे उसने ले लिया और भीमसेनसे उसी प्रकारका एक और कमल लानेको कहा। भीमसेन वायुकोणकी ओर चल पड़े। चलते समय भीषण गर्जना करना उनका स्वभाव ही था। उनके इस भीषण शब्दसे बाघ अपनी गुफाओंको छोड़कर भागने लगे। जंगली जीव जहाँ-तहाँ छिपने लगे, पक्षी भयभीत होकर उड़ने लगे और मृगोंके झुंड घबराकर चौकड़ी भरने लगे। भीमसेनकी गर्जनासे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। वे बराबर आगे बढ़ते आ रहे थे। आगे जानेपर गन्धमादनकी चोटीपर उन्हें एक विशाल केलेका वन मिला। महाबली भीम नृसिंहके समान गर्जना करते हुए उसके भीतर घुस गये।

इधर इसी वनमें महावीर हनुमान्‌जी रहते थे। उन्हें अपने छोटे भाई भीमसेनके उधर आनेका पता लग गया। उन्होंने सोचा कि अब आगे स्वर्गके मार्गमें जाना भीमके लिये भयकारक होगा। यह सोचकर वे भीमसेनके रास्तेमें लेट गये। अब भीमसेन उनके पास पहुँचे और भीषण सिंहनाद किया। भीमसेनकी उस गर्जनासे वनके जीव-जन्तुओं और पक्षियोंको बड़ा त्रास हुआ। हनुमान्‌जीने भी अपनी आँखें खोलीं और उपेक्षापूर्वक उनकी ओर देखते हुए कहा—'भैया! मैं तो रोगी हूँ, यहाँ आनन्दसे सो रहा था; तुमने आकर क्यों जगा दिया? समझदार व्यक्तिको जीवोंपर दया करनी चाहिये। यहाँसे आगे यह पर्वत मनुष्योंके लिये अगम्य है। अत: अब तुम मीठे कन्द-मूल-फल खाकर यहींसे लौट जाओ। आगे जाकर व्यर्थ अपने प्राणोंको संकटमें क्यों डालते हो।'

भीमसेनने कहा—'मैं मरूँ या बचूँ, तुमसे तो इस विषयमें नहीं पूछ रहा हूँ। तुम जरा उठकर मुझे रास्ता दे दो।'

हनुमान्‌जीने कहा—'मैं रोगसे पीड़ित हूँ। तुम्हें जाना है तो मुझे लाँघकर चले जाओ।'

भीमसेनने कहा—'परमात्मा समस्त प्राणियोंके देहमें हैं, किसीको लाँघकर मैं उसका अपमान नहीं करना चाहता।'

हनुमान्‌जीने कहा—'तो तुम मेरी पूँछ पकड़कर हटा दो और निकल जाओ।' हनुमान्‌जीका यह कहना था कि भीमसेनने अवज्ञापूर्वक बायें हाथसे हनुमान्‌जीकी पूँछ पकड़कर बड़े जोरसे खींची। पर वे टस-से-मस न हुए। अब क्रोधसे भरकर उन्होंने दोनों हाथोंसे उनकी पूँछको खींचना आरम्भ किया। पर इतनेपर भी उनकी पूँछ टस-से-मस न हुई। जब भीमकी सारी शक्ति व्यर्थ चली गयी, तब उनका मुँह लज्जासे झुक गया। वे समझ गये कि यह वानर कोई साधारण वानर नहीं है। अतएव उनके चरणोंपर गिरकर क्षमा माँगने लगे। हनुमान्‌जीने अपना परिचय दिया और बहुत-सी नीतिका उपदेश करके उन्हें वहींसे लौटा दिया। वहीं उन्होंने भीमसेनको यह वरदान दिया था कि महाभारत-युद्धके समय मैं अर्जुनकी ध्वजापर बैठकर तुमलोगोंकी सहायता करूँगा।

[महाभारत, वनपर्व]

सुभाषित-त्रिवेणी

गीतामें ज्ञानके तीन प्रकार

[Three Types of Knowledge in Gita]

❀ ***सात्त्विक ज्ञान*** *(Sāttvika Knowledge)*—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥

जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतोंमें एक अविनाशी परमात्मभावको विभागरहित समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको तो तू सात्त्विक जान।

That by which man perceives one imperishable divine existence as undivided and equally present in all individual beings, know that knowledge to be Sāttvika.

❀ ***राजस ज्ञान*** *(Rājasika Knowledge)*—

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥

किंतु जो ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके नाना भावोंको अलग-अलग जानता है, उस ज्ञानको तू राजस जान।

The knowledge by which man cognizes many existences of various kinds, as apart from one another, in all beings, know that knowledge to be Rājasika.

❀ ***तामस ज्ञान*** *(Tāmasika Knowledge)*—

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्॥

परंतु जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीरमें ही सम्पूर्णके सदृश आसक्त है तथा जो बिना युक्तिवाला, तात्त्विक अर्थसे रहित और तुच्छ है—वह तामस कहा गया है।

Again, that knowledge which clings to one body as if it were the whole, and which is irrational, has no real grasp of truth and is trivial, has been declared as Tāmasika.

[श्रीमद्भगवद्गीता १८। २०—२२]

गीतामें कर्मके तीन प्रकार

[Three types of Action in Gita]

❀ ***सात्त्विक कर्म*** *(Sāttvika Action)*—

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥

जो कर्म शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ और कर्तापनके अभिमानसे रहित हो तथा फल न चाहनेवाले पुरुषद्वारा बिना राग-द्वेषके किया गया हो—वह सात्त्विक कहा जाता है।

That action which is ordained by the scriptures and is not accompanied by the sense of doership, and has been done without any attachment or aversion by one who seeks no return, is called Sāttvika.

❀ ***राजस कर्म*** *(Rājasika Action)*—

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्॥

परंतु जो कर्म बहुत परिश्रमसे युक्त होता है तथा भोगोंको चाहनेवाले पुरुषद्वारा या अहंकारयुक्त पुरुषद्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है।

That action however, which involves much strain and is performed by one who seeks enjoyments or by a man full of egotism, has been spoken of as Rājasika.

❀ ***तामस कर्म*** *(Tāmasika Action)*—

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते॥

जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्यको न विचारकर केवल अज्ञानसे आरम्भ किया जाता है, वह तामस कहा जाता है।

That action which is undertaken through sheer ignorance, without regard to consequences or loss to oneself, injury to others and one's own resourcefulness, is declared as Tāmasika.

[श्रीमद्भगवद्गीता १८। २३—२५]

साधन-प्रगति-दर्पण (नवम्बर २०२१)

मनुष्य-जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियोंके चक्रमें सभी योनियाँ प्रारब्ध-भोगके लिये हैं; मात्र मनुष्ययोनिमें ही हमें कर्म करनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त है। यदि हमने इस दुर्लभ अवसरका लाभ उठाकर आत्मकल्याण अर्थात् परमात्मप्राप्तिका प्रयास नहीं किया, तो पता नहीं यह मनुष्य-देह फिर कब मिले। अतएव हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्योंका यथाशक्ति पालन करते हुए आत्मकल्याणके लिये भी सतत प्रयत्नशील रहें।—सम्पादक

प्रश्न	प्रथम ✿ सप्ताह	द्वितीय ✿ सप्ताह	तृतीय ✿ सप्ताह	चतुर्थ ✿ सप्ताह
१-क्या मैंने नित्य प्रात:काल उठकर परमात्माका स्मरण और धन्यवाद किया कि मुझे मानव-शरीरमें रहने और कर्तव्यपालनका सुअवसर प्राप्त हुआ है?				
२-क्या मैंने अपने दैनिक पूजा-पाठ, जप और साधनाकी अपनी निर्धारित गतिविधिको तत्परतासे निभाया है?				
३-क्या मैंने अपने व्यवहारमें संयम और अपनी वाणीपर आवश्यक नियन्त्रण रखा है?				
४-क्या इस सप्ताह मैं कुछ स्वाध्याय और सत्संग कर पाया?				
५-क्या नित्य रात्रिमें सोते समय मैंने अपना सारा प्रपंच-भार भगवान्को समर्पितकर सुख-पूर्वक नींद ली है?				

सामान्य टिप्पणी (यदि कोई हो तो)— . . . .

. . . .

. . . .

✿ साधकोंको इस प्रगति-दर्पणका नित्य अवलोकन करना चाहिये और सप्ताहके अन्तमें अपनी प्रगतिका संक्षिप्त-सा विवरण सामनेके कोष्ठकमें लिख लेना चाहिये। कोई विशेष बात हो तो नीचे लिख लेनी चाहिये। भगवत्कृपासे समर्पित साधकोंके कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

श्रीगीता-जयन्ती [१४ दिसम्बर, २०२१ ई०]

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ (गीता ६। ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), मंगलवार, दिनाङ्क १४ दिसम्बर, २०२१ ई०को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (६) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (७) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

प्र० ति० 20-10-2021
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

कल्याणका आगामी ९६वें वर्ष (सन् २०२२ ई०)-का विशेषाङ्क— 'कृपानुभूति-अङ्क'

कृपा करना परमात्माका नैसर्गिक गुण है। उनकी कृपा सभी जीवोंपर समानरूपसे रहती है। भागवतादि पुराण, महाभारतादि इतिहास, श्रीरामचरितमानस, सन्त-साहित्य एवं लोकसाहित्य आदि अनेक ग्रन्थ भगवत्कृपासम्बन्धी अनुभूतियोंसे सम्यक्रूपसे भरे पड़े हैं।

विगत पाँच दशकोंसे ये घटनाएँ 'पढ़ो, समझो और करो' तथा लगभग पन्द्रह वर्षोंसे 'कृपानुभूति' नामसे स्वतन्त्र स्तम्भके रूपमें प्रकाशित हो रही हैं। कल्याणके पाठकोंकी अनुभूत सत्य घटनाएँ होनेसे ये स्तम्भ अत्यधिक लोकप्रिय हुए। अत: भगवत्प्रेमी पाठकोंके विशेष आग्रहको देखते हुए इस वर्ष कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें **'कृपानुभूति-अङ्क'** प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया है, जिसमें भगवान्पर श्रद्धा-विश्वास बढ़ानेवाली तथा भगवल्लीलाका अनुभव करानेवाली रोचक, कथात्मक, अनुभूत घटनाएँ दी जायँगी। आशा है, यह सभीके लिये संग्राह्य एवं उपयोगी होगा।

वार्षिक-शुल्क पूर्ववत्—₹ 250	पंचवर्षीय-शुल्क पूर्ववत्—₹ 1250

वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ 250 के अतिरिक्त ₹ 200 देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है। इस सुविधाका लाभ उठाना चाहिये।

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005 गोरखपुरको भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

कल्याणके विषयमें जानकारीके लिये 09235400242, 09235400244 एवं 8188054404 पर प्रत्येक कार्य-दिवसमें 9:30 बजेसे 1:00 बजेतक एवं 2:00 बजेसे 5:30 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त 9648916010 पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005

नवीन प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य

कोड	पुस्तकका नाम		कोड	पुस्तकका नाम	
2285	ज्ञानेश्वरी	(गुजराती)	2288	श्रीश्रीगीता रामायण	(बँगला)
2286	श्रीरामचरितमानस-सचित्र सुन्दरकाण्ड-मूल मोटा बेड़िया	(गुजराती)	2289	भागवत नवनीत	(बँगला)
2287	श्रीललिता विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् मन्जरि	(तेलुगु)	2290	मत्स्यमहापुराण	(गुजराती)

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।

gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005

book.gitapress.org / gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।